अध्याय - एक

नैतिक मूल्य - पहचान और परख

नैतिक मूल्य - पहचान और परख

समाज को प्रगति, सुरक्षा और शान्ति की ओर अग्रसर करनेवाले मूल सिद्धान्त हैं "नैतिक मूल्य" । किसी भी समाज की सुरक्षा और प्रगति श्रेष्ठ मानव-मूल्यों पर आश्रित होती है । मानव समाज में परस्पर-व्यवहार के मापक के रूप में नैतिक-मूल्य स्वीकारे गये हैं जो जीवन के उन्नयन के प्रधान कारण हैं । मूल्य और नैतिक मूल्य दोनों अलग-अलग विषय होते हुए भी कुछ एक साम्य दोनों में है ।

मूल्य

"मूल्य" शब्द की परिकल्पना व्यापारी चीज़ों के भावों से है। "अर्थशास्त्र के सब से प्रधान शब्द मूल्य ही है ।[1] एक चीज़ के बदले उसके मूल्य के रूप में जो राशि दी जाती है उसे हम गणित-शास्त्र की संख्याओं के रूप में आँक सकते हैं । अर्थशास्त्र की दृष्टि से जैव-वस्तुओं की प्राप्ति का माध्यम-मात्र है मूल्य । याने - "जैव वस्तुओं का मूल्य उन पर किये जानेवाले आग्रह और उसके अभाव के कारण

1. "Value is the most important word in the whole science of economics".
Encyclopedia Americana, Vol.27, Page 867

होता है[2]।" मूल्य एक "धारणा" या "अनुभूति" है । इस के अनुसार गुण-दोष-विवेचन मूल्य के अन्तर्गत आता है । मूल्य का विवेचन "एन्सेक्लोपीडिया ब्रिटानिका" यों करता है "किसी वस्तु, पदार्थ या विषय में किसी प्रकार के गुणविवेचन का निर्धारण करना मूल्य है । ऐसे मूल्यांकन में सहजोपलब्ध चाह या प्रवणता अन्तर्निहित रहती है । अत: मूल्य एक सहजोपलब्ध विश्वास या धारणा है[3]।" हमारे दैनिक जीवन में व्यापारी-मूल्य का अपना महत्व है । भोजन की चीज़ें, कपडे, विविध प्रकार के द्रव्य आदि खरीदने केलिए रूपए, सोने, चाँदी आदि देने पड़ते हैं । याने व्यापारी के हाथ से चीज़ें उपभोक्ता के हाथ तक पहुँचाने का माध्यम है रूपया । "मूल्य" शब्द के द्वारा अलग-अलग प्रकार की तीन बातें सूचित की जाती हैं जिन के बारे में "अमरिकाना" नामक किताब में ऐसी सूचना मिलती है - "सार्वजनिक अर्थव्यवस्था के अनुसार "मूल्य" शब्द से तीन पृथक् विषय सूचित करते हैं । वे हैं - सहजोपयोगिता, पैदावार-व्यय और क्रय-शक्ति[4]।" अर्थशास्त्रियों ने "मूल्य" शब्द को व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त करने लायक एक अंगीकृत शब्द के रूप में मान्यता दी है । यह एक प्रधान तथ्य है कि उपयोग और कालक्रम के अनुसार "मूल्य" परिवर्तित होता रहता है । इस का एक स्थिर रूप या स्थिर भाव नहीं है । याने मूल्य निश्चित नहीं, अनिश्चित है । "व्यापारी जगत् में रूपए या

---

2. "Value depends upon two things, namely desirability and scarcity". Encyclopedia Americana,Vol.27,p.867

3. "Value is a determination or quality of an object which involves any sort of appreciation or interest. Such appreciation, however, involves feeling and ultimately desires or tendencies underlying the feelin Therefore value is the feeling". Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962.

4. "There are three distinct things signified by the term value, all of which are the subject of discussion in political economy inherent utility, cost of production and purchasing power." The Americana Vol.19

धन के बदले हम काम या नौकरी रख सकते हैं । तब हम नौकरी के भाव के रूप में रुपए देते हैं । अत: मूल्य रुपया या भाव के रूप में परामर्शित होता है[5] ।" किसी वस्तु या चीज़ का दाम या मूल्य कभी भी एक-सा नहीं रहता है । याने वस्तुओं के बढ़ने अथवा घटने के अनुसार मूल्य बदलता रहता है । अत: हम कह सकते हैं कि - "व्यापारी चीज़ों के अधिक उत्पादन से दाम का कम हो जाना और उपभोक्ताओं की संख्या बढने व आवश्यकताएं बढने से दाम बढ़ जाना, यह व्यापारी नियम है । तब मूल्य का हेरफेर हो जाता है[6] ।"

नैतिक-मूल्य

नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध समाज से है । इसलिए इसे एक समाज सम्बन्धी विषय भी कह सकते हैं । हमारी पूर्व-पीढ़ी के सदस्यों से देखे, सुने, अनुभव किये कार्यों के अनुसार भले-बुरे का मूल्यांकन करना स्वाभाविक है । दूसरे शब्दों में कहने पर पूर्व-पीढी के लोगों के मूल्य संकल्प ने नव-पीढ़ी के मूल्य-बोध को जन्म दिया है । आज हम जो कुछ करते हैं, दिखाते हैं, बर्ताव करते हैं, एक हद तक वे अपने पूर्वजों से अर्जित हैं । एक प्रत्येक जन समूह की संस्कृति, सिद्धान्त आदि को हम अच्छे मानते हैं तो उस का श्रेय उनकी पूर्व पीढ़ी को है । ज़ाहिर है कि "मूल्य एक अर्जित संपत्ति" है । जैसे, सोना, भवन, खेत आदि

---

5. "As wealth and services are exchanged the amount of other things which any commodity or service will procure is known as it value and value expressed in money is price."
The Americana, Vol.19

6. "Market value is sometimes distinguished from value in use, or the utility of a commodity for satisfying a human want, which is subjective."
The Columbia Encyclopedia, Vol.5, p.2226

हमारी दृश्य भौतिक संपत्ति हैं, वैसे ही सभ्यता, आदत, बर्ताव आदि व्यक्ति के अपनाये अदृश्य गुणों को हम नैतिक-मूल्य शब्द से अभिहित कर सकते हैं। ऐसे श्रेष्ठ गुणों का अभाव जिस समाज में दिखाई पड़ता है, उस समाज को हम "मूल्य-हीन समाज" कह सकते हैं।

नीति

नैतिक-मूल्य की चर्चा के सिलसिले में "नीति" की चर्चा भी समीचीन लगती है। "अपना कार्य दूसरे को दोष पहुँचाये बिना सुचारु रूप से चलाने की कुशलता को "नीति" कहते हैं[7]।" "नीति" शब्द अंग्रेज़ी के Ethics का समानार्थक शब्द है, जिस का अर्थ है - "आचरणशास्त्र, नीतिशास्त्र, नैतिक-नियम" आदि[8]। Ethics शब्द ग्रीक भाषा के ETHOS शब्द से लिया गया है, जिस का अर्थ "बर्ताव, आचरण आदि है[9]।" नीतिशास्त्र या Ethics, दर्शन-शास्त्र की एक शाखा है, जिस में भलाई, गुण, कर्तव्य जैसी मानव धारणाओं का मूल्यांकन होता है[10]। नीति-शास्त्र में नैतिक-मूल्य, कर्तव्य, मानव के आदर्श-चरित्र और उसके परिणामों का प्रतिबिम्ब हम पाते हैं। "जब मानव अपने हरेक कार्य के पीछे छिपे हुए उद्देश्य और अपने कार्यों के परिणामों के सम्बन्ध में सोचने लगा तो नीतिशास्त्र का उदय हुआ[11]।"

---

7. हिन्दी-मलयालम कोश अभयदेव, पृ.776
8. बृहत् अंग्रेज़ी हिन्दी कोश डॉ. हरदेव बाहरी, पृ.472
9. Modern Reference Encyclopedia, Vol.7, p.210
10. "Ethics, the branch of philosophy concerned with the study of those concepts which we use to evaluate human activities, in particular the concept of goodness and obligation."
The new caxton Encyclopedia, Vol.7, p.2245
11. "Ethics developed when men began to study the motives behind their actions and the results of them."
New standard Encyclopedia, Vol.5, p.218

"नीतिशास्त्र" को "नैतिक दर्शन-शास्त्र" (Moral philosophy) भी कहते हैं । इस में नैतिक-दृष्टि से ऐसा विवेचन होता है कि जीवन में अच्छा क्या है, बुरा क्या है, उचित क्या है अनुचित क्या है आदि[12] । भला-बुरा, ठीक-गलत आदि की धारणाएं समाज में पुराने जमाने से चली आयी थीं । प्रत्येक काल के चिन्तक इस विषय पर शिक्षा-निरीक्षण करते आये हैं । "मनुष्य के प्रत्येक कार्यव्यापार के पीछे के उद्देश्यों एवं फलों के बारे में जब उसने अध्ययन शुरू किया तब नीतिशास्त्र का विकास हुआ[13] ।" ऊपर हम ने देख लिया कि नीतिशास्त्र में भलाई-बुराई या गुण-दोष का विश्लेषण होता है । इस भलाई-बुराई-विश्लेषण में "विवेक" का महत्त्वपूर्ण स्थान है । नीतिशास्त्र में विवेक की आज्ञा, जो सर्वोपरि नैतिक-कानून माना जाता है, को नैतिक कार्य-व्यापार के मूल सिद्धान्त के रूप में माना गया है[14] ।"

नीतिशास्त्र के अनुसार भलाई-बुराई के विवेचन-बोध देनेवाले कई सिद्धान्त हैं । उनमें प्रमुख हैं - अनुभूतिवाद -Empiricism, युक्तिवाद या हेतुवाद Rationalism और अन्तर्प्रेरणावाद Intuitionism. "जीवन-यापन और आचरण में अपने अनुभव के द्वारा बुराई से भलाई का बोध करानेवाला सिद्धान्त है अनुभूतिवाद । युक्तिवाद से, भले-बुरे के विश्लेषण के कारणों का बोध होता है । भलाई बुराई के विश्लेषण में मनुष्य को शीघ्रबोध मिलनेवाला सिद्धान्त है अन्तर्प्रेरणावाद ।[15]"

---

12. "Ethics, also called Moral philosophy, the branch of philosophy that is concerned with what is morally good and bad, right and wrong."
The New Encyclopaedia Britanica, Vol.4, p.578

13. "Ethics has developed as man has raflected on the intentions and consequences of his acts. From this reflection on the nature of human behaviour,theories of conscience have developed,giving direction to much ethical thinking".
The Columbia Encyclopedia, Vol.2, p.674

14. "In ethics, posited categorical imperative, as basis of moral action.".
Collins Concise Encyclopedia, p.304

15. New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.218

नैतिक आचरण के पीछे कुछ प्रेरणाएं निश्चय ही अनिवार्य हैं । उन्हें कुछ लोग दैवी - प्रेरणा मानते हैं । कुछ लोग ऐसे हैं जो दैव-शक्ति पर या धर्म पर विश्वास नहीं करते हैं क्योंकि उन्हें ऐसी कोई प्रेरणा या शक्ति महसूस नहीं है । धर्म पर विश्वासी या ईश्वरीय प्रेरणा प्राप्त भक्त लोग यह मानते हैं कि उन्हें धार्मिक-नियमों का पालन करना है क्योंकि वे नियम ईश्वर के दिये हुए वचन ही हैं । दैव-शक्ति के विरोधी लोग स्वप्रेरणा से प्रेरित हैं । चाहे स्वप्रेरणा हो या दैव-प्रेरणा, व्यक्ति के द्वारा किये जानेवाले आचरण, समाज-कल्याणकारी रहना चाहिए । समाज-कल्याणकारी अचरणों को समाज से अंगीकार या मान्यता मिलती है । ऐसे आचरणों को समाज-सम्मत-नैतिक भलाई या नैतिक-लाभ से अभिहित किये जा सकते हैं ।

नैतिकता-सम्बन्धी सिद्धान्तों में आनन्दवाद (Hidonism), पूर्णतावाद (Perfectionism)कर्तव्य सिद्धान्त (theories of obligation) आदि प्रमुख हैं ।

आनन्दवाद

आनन्दवादी खुशी, ऐश्वर्य, आमोद-प्रमोद आदियों को जीवन में प्रमुखता देते हैं । "आनन्दवाद के अनुसार मानव जीवन की केन्द्रीय सार्थकता आनन्द है ।"[16] ईसा पूर्व 341-270 में जीवित प्राचीन ग्रीक दार्शनिक एपिकुरस (Epicurus) आनन्दवाद के प्रवक्ता थे ।

16. "Hidohism, in philosophy, the doctrine that pleasure is the central significance in human existence." New Standard Encyclopedia, Vol.7, p.H.122

उनके विचार में - "चरम अच्छाई या श्रेष्ठ नैतिकता आनन्द ही है । शरीर की पीडा और मन में उदित संदेह से स्वतंत्र या मुक्त होना आनन्द है ।[17] दैवी-देवताओं का भय व मृत्यु-भय ये सब से बडी बुराइयाँ हैं । आनन्द सम्बन्धी एपिकुरस की चिन्ता-धारा - "खाना, पीना और मज़ा करना" - सदियों से युवामानस में नवोन्मेष की वर्षा करती आयी है । "किसी वस्तु का इन्द्रियजन्य अनुभव के द्वारा ही उस की यथार्थता हम समझ सकते हैं । सत्य की जानकारी भी उन केलिए इन्द्रियानुभव के द्वारा स्वीकार्य था ।"[18] आनन्द की पहचान विवेक के द्वारा होनी चाहिए । इस विषय में वे आगे व्यक्त करते हैं - "शारीरिक और मानसिक पीडा रहित चरम आनन्द की पहचान विवेक के द्वारा संभव होती है और विवेकी मनुष्य धर्म, संयम और मित्रता का परिपोषण करता है । ऐसा मनुष्य अनजान वस्तुओं के भय से बच भी सकता है ।"[19] एपिकुरस के विचारवाले यह भी मानते हैं "सभी आनन्दानुभूति अच्छी है और सभी दु:खपूर्ण कार्य बुरा भी । लेकिन उन्होंने यह भी सूचित किया है कि सभी सुखदायक वस्तुओं को स्वीकारना नहीं चाहिए और सभी दु:खद बातों को छोडना भी नहीं चाहिए ।"[20]

---

17. "Epicurus taught that pleasure is the chief good. He defined pleasure asthe 'freedom of the body from pain and the soul from anxiety.' The chief evil is fear of the gods, and fear of death."
New Standard Encyclopedia Vol.5, p.E.190

18. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग - 3, पृ.13

19. "The greatest good pleasure, is to be realised through prudence, the wise avoidance of physical pain and spiritual anxiety. The prudent man cultivates justice, temperance and friendship. He also cultivates a knowledge of science to end fear of the unknown."
New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.191

20. "Epicurus held that all pleasant sensations are good and all unpleasant ones are evil, but he also held that not all pleasures are to be chosen nor all pains avoided."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.613

आनन्द कई प्रकार के होते हैं । आनन्द की प्राप्ति केलिए मनुष्य कई प्रकार के माध्यम अपना सकते हैं । शरीर का आनन्द, मन का आनन्द, आत्मा का आनन्द, बुद्धि का आनन्द इन में किसी भी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति केलिए मनुष्य अपनी इच्छा व रूचि के अनुसार जी सकते हैं । तब यह समस्या उठती है कि आनन्द व्यक्ति-केन्द्रित हो जाता है । "व्यक्ति-केन्द्रित आनन्द स्वार्थवाद या अहंवाद (Egoism) होता है जिस में व्यक्ति अपने ही आनन्द की खोज में है ।"[21] स्वार्थ-सुखान्वेषक अपने सुख की यात्रा में परोपद्रवी और कभी कभी अपने लिए भी नाशकारक हो जाते हैं । उदाहरण केलिए आनन्द की खोज में नशीले मादक द्रव्यों के सेवक अपने और समाज के बिगाड़क बन जाते हैं । अत: यह कहना पड़ता है कि - "उपयोग के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य बढता या घटता रहता है । उदाहरण केलिए दवा, शराब आदि का उचित उपयोग करने पर उनका अपना मूल्य है । लेकिन उनके अनुचित सेवन से मनुष्य केलिए हानिकारक निकलते हैं ।"[22] आनन्दवाद के नाम पर शराब-सेवन का विकृत रूप आज भी समाज में है । लेकिन "आनन्दवाद के समर्थक एपिकूरियन दार्शनिकों ने नैतिक आनन्दवाद (Ethical Hidonism) में विश्वास किया था कि जीवन की सबसे बडी मूल्यवान चीज़ आनन्द ही है ।"[23] आनन्द सम्बन्धी विचारों के पोषक, राजा सोलमन ने अपनी राय इस प्रकार व्यक्त की है कि - "मनुष्य केलिए आनन्द करने और जीवन भर भलाई करने के सिवाय, और

---

21. "Egoism holds that the individual should seek his own happiness."
New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.E.219

22. "A thing may have great value and still be used in ways which harm mankind. For example, drugs and alcohol posses great utility. They are of benefit to man when used properly. But they become harmful when people misuse them or become addicted to them."
The World Book Encyclopedia, Vol.19, p.212

23. "Ancient philosophers as Epicurus believed in ethical hedonism that is, that pleasure is the only moral good."
New Standard Encyclopedia, Vol.7, p.H.122

कुछ भी अच्छा नहीं है[24]।" आनन्दवादियों की जड सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में आते आते और भी पल्लवित होने लगी और उससे नवकुसुम सौरभ फैलाने लगे जिस का रूप है मनोवैज्ञानिक आनन्दवाद (Psychological Hedonism)। अंग्रेज़ी दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आनन्द-वादियों ने यह समर्थन किया "आनन्द के सिवा और कुछ चाहने में, मनुष्य असमर्थ है[25]।" आनन्दवाद का आधुनिक रूप है, उपयोगितावाद (Utilitarianism)। उपयोगितावाद के दो प्रमुख प्रवर्तक थे जरमी बनताम (1748-1832) और जोण स्टुवर्ट मिल (1806-1873) उनके विचार में - "बहुत अधिक लोगों को परमानंद प्रदान करने के उद्देश्य से नैतिक अवधारणा रूपायित हुई है; लेकिन आनन्द का अर्थ परिमाण सम्बन्धी हो जाने पर वह संदेहास्पद बन जाता है।"[26] उपयोगितावाद के अनुसार "समाज के बहुत अधिक सदस्यों को बहुत अधिक आनन्द प्रदान करना चाहिए।"[27]

---

24. "I know that there is no good in them, but for a man to rejoice, and to do good in his life."
The Thompson Chain Reference Bible, Forth improved edition, p.633.

25. "English philosophers of the 17th and 18th Centuries developed psychological hedonism, the theory that humans are incapable of desiring anything other than pleasure."
New Standard Encyclopaedia, Vol.7, p.H.122

26. "In the utilitarianism of Jeremy Bentham and John Stuart Mill, the conception of the moral objectives is formulated as the greatest good of the greatest number; but it is doubtful if the meaning of the good is clarified by this quantitative formulation.".
Modern Reference Encyclopedia, Vol.7, p.211

27. "Utilitarianism defines the 'Summum bonnum' as 'the greatest good for the greatest number."
New Standard Encyclopedia, Vol.5, p.219

आनन्दवाद सम्बन्धी भारतीय विचारों का विश्लेषण समीचीन लगता है । तैत्तिरीयोपनिषद् में ऐसा परामर्श मिलता है "जो परब्रह्म परमात्मा के आनन्द को जाननेवाला ज्ञानी महापुरुष होता है वह कभी किसी से भय नहीं करता है[28]।" याने आनन्द आत्मा का ही लक्षण है । वह नित्य है । "जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, प्रत्येक अवस्था में आनन्द कुछ-न-कुछ अनुभव होता है । सुषुप्ति में विषयों का अभाव रहता है, फिर भी आनन्द का अनुभव होता है, क्योंकि सोकर जागने के बाद सबके अनुभव में ऐसा ही आता है । जाग्रत् और स्वप्न में सुख तथा दु:ख रहते हैं, यद्यपि उनके मूल में आनन्द ही रहता है । सुषुप्ति में सुख दु:ख का द्वन्द्व दब जाता है और आनन्द मात्र का अनुभव होता है । अत: आनन्दवाद वर्तमान है और वह अपरोक्ष अनुभव है, वैषयिकज्ञान नहीं ।[29]"

सुख और आनन्द दोनों एक नहीं है । सुख का सम्बन्ध शरीर से है तो आनन्द का सम्बन्ध आत्मा से है । इन दोनों का विश्लेषण "हिन्दी साहित्यकोश" में इस प्रकार मिलता है "सुख का सम्बन्ध शरीर और इंद्रियों से है, आनन्द का आत्मा से । सुख विषय या ज्ञेय है, आनन्द अविषय विषयी या ज्ञाता । सुख लौकिक है, आनन्द अलौकिक या लोकोत्तर । सुख आनन्द निर्भर है, आनन्द स्वयं आत्मनिर्भर है । सुख प्रेय की प्राप्ति है और आनन्द श्रेय की ।

28· "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति ।"
- ईशादिनौ उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्णदास - गोयन्दाका, पृ·33।

29· हिन्दी साहित्य कोश भाग - 1, पृ·88

अभ्युदय सुख का क्षेत्र है और नि:श्रेयस आनन्द का । सुख का सत्गुण से विरोध हो सकता है, पर आनन्द का नहीं । जिसे आनन्द का सच्चा आस्वादन होता है, उस को अन्य सब कुछ फीका लगता है । आनन्द का स्वाद गूंगे का गुड चखना है, आनन्द अनुभवैकगम्य है । आनन्द आत्मा का स्वभाव है । आत्म ज्ञान न रहने से आनन्द का भी ज्ञान नहीं होता । आनन्द लाभ का वही साधन है, जो आत्म लाभ का है । ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग, भक्ति मार्ग, प्रपत्ति-मार्ग, पुष्टिमार्ग और योगमार्ग इस को प्राप्त करने के साधन हैं । आनन्द की उपलब्धि ही मोक्ष है ।"[30]

पूर्णतावाद

समाज-सम्मत नैतिक अच्छाइयों में दूसरा स्थान पूर्णतावाद (Perfectionism) का है । इसके अनुसार "जहाँ तक हो सके कठिन परिश्रम के द्वारा मनुष्य को अपने सभी प्रकार की शक्ति लगाकर पूर्णता की ओर बढनी चाहिए ।"[31] लेकिन आनन्दवाद के जैसे पूर्णतावाद में भी यह सन्देह पैदा होना स्वाभाविक है कि पूर्णता किस बात में वांछनीय है ? शरीर की पूर्णता, मन की पूर्णता, आत्मा की पूर्णता या बौद्धिक पूर्णता अथवा और किसी बात में पूर्णता ? मानव-जीवन का लक्ष्य भी पूर्णता की ओर प्रयाण है । जितने अधिक मिलने पर भी, और अधिक पाने की लालसा से वह आगे दौडता है । प्रत्येक मनुष्य पूर्णता के प्रयाण में अपनी अभिरुचि के अनुसार के काम में लगा रहता है । मकान बनाना,

---

30. हिन्दी साहित्य कोश - भाग - I, पृ॰88

31. "Perfectionism holds that man should strive for the fullest possible development of all his capacities". New Standard Encyclopedia Vol.5/ p.E.219

उसके साथ भौतिक संपत्तियाँ अधिक कमाना, घर के चारों ओर किला बनाना, कुत्तों को पालना, बाहर के लोगों को, यहाँ तककि भिखारियों तक को चार दिवारियों के अन्दर घुसने न देना, भोग-विलास में दिन-रात लगे रहना - इन कार्यों में पूर्णता माननेवाले लोग होते हैं । इनके विचार में ये पूर्ण हैं । लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि सभी लोग इस महत्वाकांक्षा की भावना से बुरी तरह ग्रस्त हैं । बहुत से ऐसे लोग भी हैं जो अपनी जिन्दगी की सुख-सुविधाएं न्योछावर करते हुए भी दूसरों के दु:ख-दर्द को दूर करने में जीवन की पूर्णता महसूस करते हैं । इसलिए पूर्णतावाद भी सन्देहास्पद है कि व्यक्ति को अपनी पूर्णता की दौड करनी है अथवा दूसरों को भी अपने साथ पूर्णता की दौड में साथ देना है या समूचे मानव-वर्ग के हितार्थ काम करना ज़रूरी है ।

कर्तव्य-सिद्धान्त

समाज-सम्मत नैतिक अच्छाइयों में तीसरा स्थान कर्तव्य सिद्धान्त - Theory of Obligation - का है । व्यक्ति को, अपने लिए और समाज केलिए निभाने लायक कई कर्तव्य हैं । उन फर्जों को निभाये बिना रहना खतरनाक है । कर्तव्यच्युत लोग समाज केलिए बोझ है । कर्तव्य से सम्बन्धित है, नैतिक भलाई । इम्मानुवल कान्ट (1724-1804) ने इस विषय पर अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा था "कर्तव्य करने केलिए मनुष्य को एक शुद्ध मन की ज़रूरत है । यदि मन अच्छा है तो ज़रूर वह कर्तव्यनिष्ठ बन जाएगा ।"[32] कर्तव्य-सिद्धान्त के अनुसार

32. "Kant held a theory of value according to which the only thing good in itself and without qualifications is a good will. That will is good which acts out of a sense of duty."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.616

एक वस्तु की अच्छाई या बुराई उसके परिणाम के अनुसार निश्चित कर सकता है । कर्तव्य-सिद्धान्त की चर्चा में "द एनसैक्लोपीडिया अमरिकाना" का मत ऐसा है - "कर्तव्य-सिद्धान्त उद्देश्यवाद से संबंधित है । एक आचरण की अच्छाई या बुराई की परिकल्पना उसके परिणाम के अनुसार कर सकते हैं ।"[33] कर्तव्य-सिद्धान्त की आधार शिला व्यक्ति का विवेक है । इस विवेक के अनुसार व्यक्ति और कई व्यक्तियों का समूह मिल कर कर्तव्य निभाते हैं । "नैतिक-सिद्धान्त में व्यक्ति अपने लिए एक आचरण-स्तर निर्मित करता है और कभी कभी एक प्रत्येक जनविभाग उसके सदस्यों केलिए जिम्मेदारी के रूप में काम करते हैं ।"[34] यह सिद्धान्त व्यष्टि और समष्टि दोनों की भलाई पर बल देता है । इसलिए ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कर्तव्य को अधिक महत्व देते हैं । "एक व्यक्ति, अपने द्वारा किये जानेवाले कार्य, अपनेलिए अहित कर जानकर भी, विवेक की आज्ञा मान कर करने को विवश हो जाता है । ऐसे लोगों केलिए कर्तव्य निष्ठा ही चरम आदर्श होते हैं ।"[35] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कर्तव्य-सिद्धान्त का समाज में अपना महत्व है ।

उपर्युक्त तीनों सिद्धान्तों - आनन्दवाद, पूर्णतावाद, कर्तव्य सिद्धान्त - के विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि की भलाई केलिए कर्तव्य सिद्धान्त ही अधिक लाभदायक और अनुकरणीय होगा ।

---

33. "Theories of obligation may be teleological, that is, the rightness or wrongness of an action is held to be determined solely by its consequences actual or expected."
The Encyclopedia Americana, Vol.10, p.610

34. "Moral Principles may be viewed either as the standard of conduct which the individual has constructed for himself or as the body of obligations and duties which a particular society requires of its members."
The Columbia Encyclopedia Vol.2/ p.674

35. "Duty is the only moral good for some people. This doctrine holds that a person should follow the dictates of his conscience instead of giving primary consideration to the consequences, possibly unpleasant to him, of his conduct."
New Standard Encyclopedia Vol.5, p.219

भारत में नीति-चिन्तन

अति प्राचीन काल से, भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नीति-संबंधी विचार-धाराओं का सोता लगातार प्रवहित रहता था और आज प्रवहित रहता है भी । वैदिक काल के ग्रन्थों में अतिथि-सत्कार[36], सखा की सहायता, सत्य की प्रशंसा[37] असत्य की निन्दा, पापी को दण्ड, धर्मी को पुरस्कार आदि नीतियाँ प्रतिपादित हैं । ब्राह्मण-ग्रन्थों की नीतियाँ भी वैदिक कालीन नीतियों से मिलती जुलती है । सत्य, पुरुषार्थ आदियों का महत्व ब्राह्मणकालीन नीतियाँ हैं । उपनिषदों के काल में आते आते भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण स्थान देने लगा । इस काल में परलोकानन्द की इच्छा प्रबल थी । "मनुस्मृति" में धर्माधर्म का विवेचन, सदाचार, ब्रह्मचर्य, कर्तव्य पालन, काम-क्रोधादि-जन्य-दोष, साम-दान-भेद-दण्ड, सत्व-तम-रज गुण आदि नीति-सम्बन्धी विचार-विश्लेषण मिलते हैं । रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में अपने अपने जमाने के जीवन-सम्बन्धी श्रेष्ठ आदर्श उपलब्ध हैं ।

---

36. न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विद्यया बहवन्नं प्राप्नुयात् । आराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वैमुखतोऽन्नं राद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्नं राध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नं राद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नं राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽन्नं राद्धम् । अन्ततोऽस्मा अन्नं राध्यते । य एवं वेद ।
- ईशादि नौ उपनिषद्, पृ·346

37. "सत्यमेव जयति नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।
- ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्णदास गोयन्दका
पृ·222

जीवन को नश्वर से अनश्वर बनाने की प्रेरणा भारतीय-चिन्तन की खूबी है । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के मार्ग से अग्रसर होते जीवन-विचार से आज समूचे विश्व के लोग आकर्षित हो गए हैं । सात-समुद्र की सीमाओं को लाघ कर हमारे आदर्श आज विश्व-शांति के सन्देशवाहक बन गए हैं । "नीति" की स्थूल परिभाषा "हिन्दी साहित्य कोश" में इस प्रकार मिलती है "समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने केलिए जिन विधि निषेध मूलक सामाजिक, व्यावहारिक, आचारिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश, काल और पात्र के सन्दर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं ।"[38] अब हमें पुरुषार्थों पर विशद चर्चा अनिवार्य है ।

पुरुषार्थ

भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थों - for ends[39]-की गणना आदर्श-जीवन से प्रेरित हुई है । इस विषय में "हिन्दी कामसूत्र" में इस प्रकार परामर्श हुआ है - "भारतीय-सभ्यता की आधार शिला

---

38. हिन्दी साहित्य कोश भाग - I, तृ.सं., पृ.353

39. "One of the main concepts which underlies the Hindu attitude to life and daily conduct is that of the four ends of man - Purushartha - The first of these is characterized by considerations of righteousness, duty and virtue. This is called dharma, There are other activities, however, through which a man seeks to gain something for himself or pursue his own pleasure. When the object of this activity is some material gain, it is called artha; when it is love or pleasure, it is Kama. Finally, thee is the renunciation of all these activities in order to devote oneself to religious or spiritual activities with the aim of liberating oneself from the wordly life; this is moksha".
Social Change in India : B. Kuppuswamy, p.68

चतुर्वर्ग - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - हैं। हमारे अन्तर्गत शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये ही चार अंग अनन्त कामनाओं एवं आवश्यकताओं के केन्द्र माने जाते हैं। इन के सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से हुआ करती है। शरीर के पोषण और संवर्द्धन केलिए अर्थ की, मनस्तुष्टि केलिए काम की, बुद्धि केलिए धर्म की और आत्मा की शान्ति केलिए मोक्ष की आवश्यकता पड़ती है। ये आवश्यकताएं अनिवार्य हैं, अपरिहार्य हैं। क्योंकि बिना भोजन-वस्त्र के शरीर कृश और निष्क्रिय बन जाता है। बिना काम (स्त्री) के मन कुंठित और निकम्मा बन जाता है, बिना धर्म (सत्य, न्याय) के बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बिना मोक्ष के आत्मा पतित बन जाती है।[40]" जीवन को सोद्देश्य और सार्थक बनाने केलिए पुरुषार्थों की जानकारी आवश्यक है। अतः अब हम चार पुरुषार्थों पर संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

धर्म

"धर्म" जीवन-रूपी सौध की नींव है।[41]" धर्म का सम्बन्ध भवलोक और परलोक दोनों से है। याने धर्म, भूमि में आरंभ होकर स्वर्ग तक फैलनेवाला विषय है। मनुष्य और पशु में कई बातों में समानताएं हैं, पर धर्म की चिन्ता मानव को जानवर से उन्नत साबित करती है। पशु से उन्नत मनुष्य अपने प्रयत्नों तथा शक्तियों को उचिततम दिशा में लगाकर अपने जीवन को अधिक से अधिक सफल और समुन्नत बनाता है। डॉ॰ देवराज इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं - "मनुष्य की

---

40. हिन्दी कामसूत्र श्रीदेवदत्त शास्त्री, पृ॰3, प्रकाशन 1964
41. विश्व विज्ञान कोश (मलयालम) भाग - 8, पृ॰ 399, वर्ष 1972

नैतिक तथा धार्मिक खोज, अन्तिम विश्लेषण में, जीवन-विवेक की खोज है । मनुष्य यह जानना चाहता है कि जीवन को उचित ढंग से चलाने या व्यतीत करने का मार्ग कौन-सा है[42]।" धर्म सम्बन्धी धारणा से प्रेरित विवेकी मनुष्य अपने सहजीवियों से और आत्मा दोनों से नाता जोड़ते हुए इहलोक जीवन मंगलमय बना सकता है ।

धर्म शब्द के कई अर्थ होते हैं - कर्तव्य, फर्ज, आदत, सदाचार आदि[43]।सुकृत, पुण्य, न्याय, स्वभाव, आचार आदि अर्थ भी अमरकोष के अनुसार हैं[44]। धर्म से प्रेरित मनुष्य कर्तव्यनिष्ठ, सदाचार-प्रिय, सुकृत करनेवाला, पुण्य जीवन के इच्छुक, न्यायी आदि बन सकते हैं । धर्म एक व्यक्तिगत अनुभव है । पर उसका फल पूरे समाज पर प्रतिफलित होता है । क्योंकि "मनुष्य एक सामाजिक जीव है[45]।" धर्म की चिन्ता मानव जीवन में संयम लाता है जिस से उसका क्रमिक विकास होता है । धर्मी लोगों के बारे में बैबिल में ऐसा बताया गया है कि - "धर्मी उस वृक्ष के समान है, जो बहती नालियों के किनारे लगाया गया है, और अपनी ऋतु में फलता है, और जिस के पत्ते कभी मुरझाते नहीं, इसलिए जो कुछ वह पुरुष करे वह सफल होता है[46]।" समाज-कल्याणकारी, सफल जीवन का इच्छुक धर्मचिन्तक, मनुष्य सेवा करने वाला और विश्व भ्रातृत्व के पुजारी रहेंगे । "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अनसूयता, शौच आदि सामान्य धर्म होते हैं[47]

---

42. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन डॉ.देवराज, पृ.311,प्र.सं.1957
43. हिन्दी मलयालम कोश अभयदेव, पृ.701, प्र.सं.1969
44. अमरकोश (मलयालम) पृ.538, सं.1959
45. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन डॉ.देवराज, पृ.310
46. भजन संहिता बैबिल समिति, बंगलूर, पृ.783 (अध्याय 1:3)
47. विश्वविज्ञान कोश भाग 8 (मलयालम) पृ.400, प्र.सं.1972

जो गुण धर्मप्रिय लोगों में हम पहचान सकते हैं । धर्म के द्वारा मनुष्य संसार का त्याग किये बिना आध्यात्मिक वास्तविकता की ओर बढ सकते हैं और कर्तव्य-पालन का बोध उन में जागरित होता है । अत: "धर्म-केन्द्रित जीवन आदर्शपूर्ण रहता है और विजय ऐसे पुरुषों के पक्ष में भी होगी[48] ।" हम यों कह सकते हैं कि "नैतिक जीवन की बुनियाद धर्म है[49] ।"

अर्थ

दूसरा पुरुषार्थ अर्थ है । अर्थ का सामान्य तात्पर्य भौतिक सुखों और आवश्यकताओं की पूर्ति से है । मात्र अर्थ की प्राप्ति होने से सुखपूर्ण जीवन न बिताया जा सकता, अर्थ केवल उस का एक हिस्सा देता है । धर्म-सम्बन्धी नियमों का उल्लंघन कर के धन कमाना अनुचित है । लेकिन एक प्राचीन धारणा हमारे समाज में आज भी लब्ध-प्रतिष्ठ है - "अनपढ होते हुए भी, धनवान होने पर उसके मित्र अधिक होते हैं और वह पंडित जैसा आदरणीय होता भी है[50] ।" इसलिए धनी लोग गर्व के साथ अपने सिर उठाते हैं और गरीब नरकयातनाएँ सहते हैं । नेहरूजी ने ऐसी हालत को व्यक्त करते हुए कहा था - "पर्स की शक्ति एक बडी शक्ति है[51] ।"

---

48. "जहाँ धर्म तहँ कृष्ण है, जहाँ हरि विजय प्रमान ।"
- महाभारत सबलसिंह चौहान कृत, कर्ण पर्व - पृ.929

49. हिन्दी काम सूत्र श्रीदेवदत्त शास्त्री, पृ.61, प्र.1964

50. "यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवा: ।
यस्यार्था:स पुमाँल्लोके, यस्यार्था: सच पण्डित: ।।"
- श्रीमन्महाभारतम्, शाति पर्वणि, पृ.327

51. "The Power of the purse is always a great power."
Wit And Wisdom Of Nehru : N.B. Sen, p.603

धनोपार्जन अपने आप में दोष नहीं है । भौतिक वस्तुएं प्राप्त करके जीवन के बाह्य स्वरूप को बढावा देकर आन्तरिक स्वरूप को छोड देना निरर्थक है । धन कमाना, उपभोग करना, आदि बातों पर विशेष ध्यान आवश्यक है । भागवत् पुराण में सम्यक रीति से धनोपयोग का समर्थन किया गया है - "धन का एक अंश धर्म केलिए, दूसरा अंश यज्ञ केलिए, तीसरा भाग धनाभिवृद्धि केलिए, चौथा भाग भोग केलिए और पाँचवाँ हिस्सा अपने स्वजनों केलिए खर्च किया जाना चाहिए ।"[52] उचित ढंग से धन कमाना और उचित ढंग से खर्च करना यह केवल न्याय संगत है । लेकिन अक्सर ऐसा देखा जाता है कि अन्याय के मार्ग से धन कमाने केलिए कुछ लोग भागदौड करते हैं । ऐसे धनार्जन के बारे में बैबिल में यह चेतावनी मिलती है - "जो धन झूठ के द्वारा प्राप्त हो, वह वायु से उड जानेवाला कुहरा है ।"[53] न्याय के मार्ग से अर्थ की प्राप्ति उचित ही है, क्योंकि - "अन्याय के बडे लाभ से न्याय से थोडा ही प्राप्त करना उत्तम है ।"[54] अगर कोई अधर्म के मार्ग से कमाना चाहता तो उसकी परिणति को भी समझना अनिवार्य है । इस विषय पर बैबिल में साफ साफ बताया गया है - "जो अन्याय से धन बटोरता है वह उस तीतर के समान होता है जो दूसरी चिडिया के दिये हुए अंडों को सेती है, उसकी आधी आयु में ही वह उस धन को छोड जाता है, और अन्त में वह मूढ ही ठहरता है ।"[55]

---

52. भागवत् पुराण - 8,19,37

53. "A fortune made by a lying tongue is a fleeting vapor and a deadly snare."
The Holy Bible New International Version (Proverbs 21:6) p.741, Year 1978.

54. "Better is a little with righteousness than great revenues with injustice."
The Holy Bible Standard - Edition, p.712, year 1901

55. "As the partridge which gathers a brood that she did not hatch and sits on eggs which she has not laid, so , is he who gets riches and not by right. He will leavethem, or they will leave him, in the midst of his days, and at his end he will be a fool."
The Amplified old Testament - Jeremiah 17:11,p.699
Year 1962

आज का युग अर्थ प्रधान है । जीवन सुचारू रूप से चलाने केलिए रूपए की आवश्यकता तो है । लेकिन जीवन का उद्देश्य मात्र धन कमाना नहीं है । ऐसा होने पर मनुष्य धन का गुलाम बन जाएगा । अर्थ के नियंत्रक के रूप में मनुष्य के रहने पर उससे अनर्थ नहीं होगा, जबकि अर्थ के, मालिक बन जाने पर मनुष्य उसका दास बन जाएगा । अर्थ का दुरूपयोग ही आज की अशिक्षा, बेकारी, गरीबी आदि का मूल कारण है । संपत्ति किसी किसी जगह में ढेर पडी रहती है । उसका सम्यक वितरण अनिवार्य है । इस विषय पर गाँधीजी का विचार इस प्रकार है - "यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज़ केवल उतना ही पैदा करती है, जितना हमें चाहिए । और यदि हरएक आदमी जितना उसे चाहिए, उतना ही ले, ज्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे और कोई आदमी भूखा न मरे ।"[56]

काम

पुरुषार्थों में काम का स्थान तीसरा है । सुखानुभव की चाह मनुष्य की एक आदत है । काम का संबंध सुखानुभूति से है । धर्म पर आधारित काम की पूर्ति या सुखानुभूति, भारतीय चिन्तन-धारा की दृष्टि से जीवन-मूल्यों के अन्तर्गत रखी गई है । मोक्ष प्राप्ति ऐहिक जीवन के बाद मिलनेवाला आनन्द है तो काम प्राप्ति ऐहिक जीवन काल में मिलनेवाला एक जीवन-मूल्य है । काम और मोक्ष दोनों का लक्ष्य आनन्द ही है । काम से जनित आनन्द इन्द्रिय जन्य क्षणिक सुख है । काम का लक्षण आचार्य वात्स्यायन ने व्यक्त किया है - "कान, त्वचा, आँख, जिह्वा, नाक इन पाँच इन्द्रियों की इच्छानुसार शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध अपने इन विषयों में प्रवृत्ति ही काम है

---

56. साबरमती का संत यशपाल जैन, पृ.101, वर्ष 1969

अथवा इन इन्द्रियों की प्रवृत्ति से आत्मा जो आनन्द अनुभव करता है, उसे "काम" कहते हैं।"[57] मनुष्य के अन्दर ही स्थित उसके छः दुश्मन हैं - काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य । इनमें प्रथम स्थान काम को है । इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि - "इन्द्रिय विषयों की तृष्णा जब धर्म की सीमाओं का उल्लंघन करेगा, तब वह दुर्गुण और पाप बन जाएगा।"[58] यह हालत याने कामान्धता या विषयान्धता व्यक्ति की प्रगति में बाधक है ।

काम शब्द का अर्थ है "कामना" या "इच्छा"[59]।
याने "कामना का साक्षात्कार है काम"[60] । कामना, इच्छा या आग्रह से प्रेरित मनुष्य, सद्कर्म की ओर अग्रसर होता है । बिना काम या आग्रह से कोई भी, धर्म, अर्थ और मोक्ष केलिए कोशिश नहीं करेगा । याने काम एक ऐसा गुण है जिस से प्रेरित व्यक्ति ही परिश्रमशील रहता है । दुनिया की प्रगति के पीछे काम-भावना का अपना हाथ है भी । सृष्टि का रहस्य भी काम-भाव से प्रेरित है और पति-पत्नी का दाम्पत्य जीवन भी इसी काम-भावना से प्रेरित हुआ है । भारतीय चिन्तन में दाम्पत्य जीवन को विशेष बल दिया गया है एवं जीवन के चार आश्रमों - ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास[61] - में गृहस्थाश्रम का महत्वपूर्ण स्थान है । दाम्पत्यजीवन में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध का स्थान अद्वितीय है ।

---

57. "श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां
स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ।।"
- हिन्दी काम सूत्र श्रीदेवदत्तशास्त्री, पृ.42
58. विश्वविज्ञानकोश (मलयालम) भाग 8, पृ.400
59. हिन्दी मलयालम कोश अभय देव, पृ.273, प्र.सं.1969
60. विश्वविज्ञान कोश (म) भाग 4, पृ.22
61. वही, भाग 2, पृ.68

इससे व्यक्ति और समाज की प्रगति अवश्य होती है । इस विषय में प्रसिद्ध मनोरोग चिकित्सक एवं विचारक "डॉ॰ रिचार्ड वन क्राफ्ट एबिंग" का विचार यों है - "मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में प्रेरक शक्ति के रूप में यौन-जीवन का अपना महत्वपूर्ण स्थान है जो उसकी प्रवर्तन क्षमता बढाकर धन कमाने, भवन बनाने, उन्नत पदों पर पहुँचने की प्रेरणा देता है । यौन-विचार ही सभी नैतिक धारणाओं का मूल है और सौन्दर्य बोध, धर्म आदि भी इसी की प्रेरणा से है[62]।"

विश्व मानव की समस्त वासनायें वित्तेषणा, दारेषणा और लोकेषणा इन तीन भागों में विभक्त हैं । सूक्ष्म अध्ययन से यह सत्य साबित होता है कि दारेषणा में ही समस्त वासनाएं अन्तर्भूत हो जाती है । इस विषय का विश्लेषण "हिन्दी काम सूत्र" में इस प्रकार मिलता है "स्त्री की कामना का ही सार आकर्षण है । और आकर्षण स्त्री-पुरुष के मिलन-संयोग में परिणत हो जाया करता है । धन, स्त्री या यश की कामना केवल आनन्द केलिए की जाती है । आनन्द ही सभी वासनाओं का मूल कारण है । यही मूल प्रेरक शक्ति है[63]।" आनन्द की प्राप्ति केलिए समाज विरुद्ध तरीका अपनाने पर काम का महत्व नष्ट हो जाता है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जीवन में "काम" का महत्वपूर्ण स्थान है । लेकिन डॉ॰ रिचार्डवन के विचार को सदा याद रखना चाहिए -

---

62. "Sexual life no doubt is the one mighty factor in the individual and social relations of man which discloses his power of activity, of acquiring property, or establishing a home, of awakening altruistic sentiments toward a person of the opposite sex, and toward his own issue as well as toward the whole human race. Sexual feeling is really the root of all ethics, and no doubt of aestheticism and religion."
Psychopathia Sexualis : Dr.Richard Von Krafftebing, p.29-30, Edn.1965, Printed in U.S.A.

63. हिन्दी कामसूत्र : श्री देवदत्त शास्त्री, पृ॰ 26.

"मनुष्य केवल कामेच्छा को तृप्त करने केलिए परिश्रम करता है तो वह स्वयं, अपने को जानवर के समान बनाता है । लेकिन, नैतिक विचार, महत्वाकांक्षा, सुन्दरता आदि को ध्यान में रखकर अपने यौन-विकार को लगाम लगाने पर एक उन्नत स्थान तक पहुँच सकता है।[64]"

मोक्ष

चौथे पुरुषार्थ मोक्ष की गणना अन्य तीनों पुरुषार्थों से श्रेष्ठ की कोटि में है । हिन्दू धर्म के अनुसार - "परमात्मा के साथ एकाकार हो जाने का नाम ही मोक्ष है।[65]" मृत्यु के बाद प्राप्त व्यक्तिगत अनुभूति के रूप में मोक्ष माना जाता है । भौतिक जीवन से पदोन्नति के रूप में मृत्यु से प्राप्त मोक्ष की गणना है । इस मोक्ष की चिन्ता ने ही मानव जीवन को नश्वर से अनश्वर किया है । कुछ वर्ष संसार में नाना प्रकार की कष्टताओं एवं सुखों को भोग कर जीवनान्त में मिट्ठी में मिलना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है तो ऐसा जीवन निराशामय ही रहेगा ।

मानव जीवन शरीर, मन एवं आत्मा का मिश्रित रूप है । भोजन करने से, अभ्यास करने से शरीर मोटा बनता है । शिक्षा पाने से, दूसरों के संपर्क से, मन विकसित होता है । परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में जो आत्मा हम में वास करता है वह हमारे प्रत्येक व्यवहार में हामी भरता हुआ या नाहीं करता हुआ हमारी चेतावनी करता रहता है ।

---

64. "Man puts himself atonce on a level with beast if he seeks to gratify lust alone, but he elevates his superior position when by curbing the animal desire he combines with the sexual functions ideas of morality, of the sublime and the beautiful."

Psychopathie Sexualis : Dr.Richard Von Krafftebing p.29

65. अलबरूनी का भारत रजनीकान्तशर्मा (अनुवादक), पृ.73 प्र.सं.1967

भले-बुरे का विश्लेषण करके सुचारु मार्ग से हमें चलाने की मदद करना उस आत्मा का काम है । शरीर और मन को पवित्र करता हुआ हमारी नियंत्रक आत्मा वास्तव में हमारा दीपक है । मृत्यु के द्वारा जब हम इस संसार से हटाये जाते हैं तब आत्मा की क्या हालत है इस पर कई धर्मों में कई कई मत हैं । हिन्दू धर्म के अनुसार आत्मा परमात्मा से साक्षात् करता है ।

मोक्ष सम्बन्धी विविध विचार

भारतीय संस्कृति में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति माना गया है । मोक्ष शब्द के ये अर्थ मिलते हैं कि - "कारावास से मुक्ति, जन्म-मरणादि दु:खों से छुटकारा, मुक्ति, दु:ख मोचन से आत्मा को प्राप्त आनन्द, मृत्यु आदि ।"[66] ईशादि नौ उपनिषद् के अनुसार अखिल विश्व-ब्रह्माण्ड सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वकल्याण गुण स्वरूप परमेश्वर से व्याप्त है । यों समझ कर निरन्तर उन का स्मरण करते हुए इस जगत् में केवल कर्तव्य पालन केलिए ही विषयों का यथाविधि उपभोग करो । विषयों में मन को न फँसने दो, इसी में तुम्हारा निश्चित कल्याण है । ये सब परमेश्वर के हैं, उन्हीं की प्रसन्नता केलिए इन का उपयोग होना चाहिए ।[67] याने ब्रह्ममय जीव को सदा परमेश्वर के हितानुसार जीना चाहिए । इस विचार की पुष्टि करते हुए "श्वेताश्वतरोपनिषद्" में ऐसा परामर्श

66· हिन्दी मलयालम कोश अभयदेव, पृ·1120

67· ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेनत्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।। । ।।
- ईशादि नौ उपनिषद् व्याख्याकार - हरिकृष्ण गोयन्दका, पृ·26

मिलता है - "जीव केलिए आश्रय और सब का शासक सर्वशक्तिमान परमात्मा की शरण मनुष्य को ग्रहण करनी चाहिए । यही मनुष्य शरीर का अच्छा उपयोग है[68]।" ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संसार के जीव-चक्र में रहते मनुष्य को आदर्श-जीवन बिताने पर मोक्ष मिलता है । मोक्ष के बारे में ऐसी धारणा प्रचलित है कि वह नग्न नयनों से भौतिक वास के समय दर्शनीय कोई मूल्य नहीं है । मोक्ष, मुक्ति, कैवल्य आदि नामों से मुक्ति की कल्पना कई धर्मों में हुई है ।

ईसाई धर्म में मोक्ष केलिए "रक्षा" या Salvation शब्द का प्रयोग हुआ है । "पुराने नियम" के अनुसार मोक्ष या रक्षा पाप से छुटकारा है[69]।" "रक्षा" में रक्षा देने केलिए एक शक्ति या रक्षक अथवा उद्धारक की ज़रूरत है । इस "रक्षा" का अनुभव मनुष्य अपने इहलोक जीवन काल में शुरू कर सकता है । याने रक्षा एक चलती प्रक्रिया है । रक्षक की ज़रूरत तब महसूस होती है जब मनुष्य को यह मालूम पडे कि उसमे रक्षा या बचाव असंभव है । अपनी बुद्धि-शक्ति, ज्ञान, संपत्ति आदि से भी परे और एक महान शक्ति से जब मनुष्य साक्षात्कार करता है तब उस सर्वशक्तिमान ईश्वर पर विश्वास करना या आश्रय रखना वह शुरू करता है । ईश्वर की शक्ति में सहारा चाहता हुआ एवं अनुताप के साथ जो ईश्वर को पुकारता है उसे रक्षा का अनुभव होने लगता है । तब से वह परम शक्तिमान परमेश्वर का घनिष्ठ सम्बन्धी या पुत्र कहला सकता है । याने पश्चात्ताप और आश्रयबोध के द्वारा पिता-पुत्र का सम्बन्ध आरंभ होता है । इस प्रकार ईश्वरीय ज्ञान और शक्ति से वह चालित

---

68. "सर्वेन्द्र य गुणाभास सर्वेन्द्रयविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशान सर्वस्य शरण बृहत् ।। 17 ।।
- ईशादिनौ उपनिषद्, पृ.386

69. "Salvation in the sense of the New Testament is Salvation from sin."
The Christian Doctrine of Salvation : Sigfrid Estborn, p.22, (C.L.S. Madras, Year 1958)

होने लगता है । जैसे पुत्र की ज़रूरतें पिता निभाते हैं वैसे रक्षक परमेश्वर भक्त मनुष्य को पालते हैं । जो कोई, इस प्रकार, रक्षा महसूस करता है, उसके जीवन में परिपूर्ण परिवर्तन दीखेगा । वह दूसरों का सहायक निकलेगा, झूठ, छल, कपट, आदि केलिए उसमें फिर स्थान नहीं रहेगा । मुसीबतें सहने पर भी सत्य पर वह स्थिर रहेगा । आप भूखा रहने पर भी दूसरों को खिलाने में भरसक कोशिश करेगा । वह प्रपंच पर परमेश्वर का प्रतिनिधि रहेगा । उसकी मृत्यु केलिए, परमेश्वर के द्वारा निश्चित समय में वह इस संसार से स्वर्गवास केलिए बुलाया जाता है जिसे वह आनन्द के साथ स्वीकार करता है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों के समन्वय में ही जीवन की सार्थकता और सफलता निर्भर है ।

मूल्य एवं नैतिक मूल्य में अन्तर

अब तो स्पष्ट हो गया कि नैतिक मूल्य मनुष्य जीवन के उच्च आदर्शों से सम्बन्धित है, जिन्हें आँकने केलिए व्यक्ति के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालना पड़ता है । चीज़ों का दाम या मूल्य चीज़ों को नाप तोल कर निश्चित करता है तो नैतिक मूल्य व्यक्ति, व्यक्ति के सम्पर्क या उनके बर्तावों के आधार पर माप सकते हैं । याने मानव-जीवन से सम्बन्धित है नैतिक मूल्य जिस ने पशु और मानव के बीच एक विभाजक रेखा खींची है । कभी कभी मनुष्य के हृदय में परस्पर विरोधी इच्छाएं व चिन्ताएं उदित होती हैं, विरोधी प्रवृत्तियों के शिकार होकर वह विभिन्न दिशाओं में चलने को विवश हो जाता है । समय-समय पर मन में उठनेवाली इच्छाओं की पूर्ति करने के पीछे यदि वह दौड़ता है तो

ज़रूर ही वह समाज-विरोधी बन जाएगा । नैतिक मूल्य मनुष्य को समाज-विरोधी बनने से एक हद तक रोकते हैं । याने पाशविक वृत्तियों पर नियंत्रण करके समाज के अन्य सदस्यों के साथ मेल जोल के साथ रहने में मदद करनेवाले तत्वों के रूप में नैतिक मूल्य हमारे मार्गदर्शक हो जाते हैं । मूल्यों को पहचान कर जब विचारशील मानव ने अपनी शारीरिक आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी तब वह मानव बना । जब कभी मानव को इन मानसिक वृत्तियों को अपने काबू में रखना पडा या इन वृत्तियों को ऊर्ध्वगामी करना पडा तो उसने नैतिक मूल्यों का सहारा लिया । स्थूल शारीरिक आवश्यकताओं की जंजीरों को तोड कर सूक्ष्म मानसिक जगत में पहुंचने केलिए इन नैतिक मूल्यों की सख्त ज़रूरत है ।

नश्वर जीवन से अनश्वरता की ओर संकेत

मानसिक वृत्तियों को काबू में करने के प्रयत्न में मानव सभ्य बनता रहा । सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण के साथ जीवन को एक सुगठित ढांचा देने के प्रयत्न में मनुष्य रहा तो उसने अनुभव किया कि जीवन चन्द क्षणों का है । जीवन की इसी नश्वरता की ओर कई विचारकों ने संकेत किया है । विलियम शेक्सपियर ने अपने प्रसिद्ध नाटकों के प्रमुख चरित्रों से जीवन की परिभाषा दिलाने का परिश्रम किया था । "जोणफालस्टाफ" के विचार में - "लघु दूर चलती एक गाडी है जीवन ।"[70] "किंग हेन्ट्री फोर्थ" के "मेसन्चर" जीवन की परिभाषा यों देता है - "जीवन का समय बहुत छोटा है । लघु समय बिताने की जगह लम्बी होने पर भी, घडी केन्द्र से यात्रा करते हुए वह एक घण्टे के अन्दर लौट

---

70. "Life is a shuttle"
Merry Wives of Windsor Shakespeare, Act.5, Scene I, p.62

आता है।[71]" एक चीनी विचारक "चुआनशियस" के विचार में - "एक अनन्त जंजीर को आपस में मिलाती दो कडियाँ हैं जीवन और मृत्यु जो अनिवार्य है जिस का आगमन या बिछुडन हम रोक नहीं सकते।[72]" जीवन की अनिश्चितता के बारे में बैबिल में बताते हैं - "पृथ्वी पर हमारे दिन छाया की नाई बीतते जाते हैं।[73]" कभी कभी प्रलय करती हुई बहती नदी के समान है जीवन।[74]" जीवन तो एक नाटक-सा है। इस विषय पर ब्रिटानिका विश्वविज्ञान कोश में यों टिप्पणी देता है "जीवन भरे हुए मंच पर प्रदर्शित नाटक के समान है।[75]" जीवन में लघुता या नैमिष्किता-बोध के उदित होने के कारण कुछ मनुष्य जीवन से मुँह मोड रहे हैं। यह एक सत्य है कि मनुष्य इस संसार में जन्मता है, पलता है, काम करता है, साथ ही साथ मृत्यु की छाया उसके ऊपर सदा मंडराती रहती है। उस का जीवन यहाँ अनिश्चित है। जन्म और मृत्यु के बीच का फासला अनजान है। इस फासले की परिधि आँकने में विवश मानव कभी निराश होता है, कभी संयमहीन होता है, कभी

---

71. "The time of life is very short. To spend that shortness basely were too long; if life did ride upon a dials point still ending at the arrival of an hour".
First part of King Henry IV : Shakespeare, Act 5, Scene 2, The Complete works of Shakespeare,p.409

72. "Life and death are but links in an endless chain. Life is inevitable, for it comes and cannot be declined. It goes and cannot be stopped."
Encyclopedia of Religion and Ethics : Vol.8, p.15 Edn.1971

73. "Our days upon earth are a shadow".
Holy Bible : Job 8:9, p.659

74. "Life is like a river that is often in flood."
Encyclopaedia Britanica,14th Edition,Vol.14/ p.42

75. "Life which must be envisaged as a drama on a crowed stage."
Encyclopaedia Britanica,14th Edition,Vol.14,p.42

लक्ष्यहीन होकर मनमाना करने को बाध्य हो जाता है । ऐसे मनमानेपन से अपना दोष और समाज का नाश होता है । ऐसी लक्ष्यहीनता, नश्वरबोध व असुरक्षा के मध्य में मनुष्य को अनश्वर बनाने में सहायक गुण छिपे रहते हैं । उन्हें पहचानने की शक्ति मनुष्य को "मूल्य बोध" से मिलती है । जिस मनुष्य में मूल्यों का विचार है उसे हम सुसंस्कृत, सभ्य या परिष्कृत पुकार सकते हैं । ऐसे व्यक्तियों का आन्तरिक पक्ष या आत्मा सुदृढ होता है जिस से उनके बर्ताव समाज कल्याणकारी निकलते हैं ।

नैतिक मूल्यों की महत्ता

समाज में मूल्यों की मौजूदगी ही मूल्यों की महत्ता का सूचक है । किसी आदत या आचरण को सदियों के बाद भी आचरित होता आ रहा है तो उसे श्रेष्ठ गुण मानना पड़ता है । समाज-कल्याणकारी भलाइयों या गुणों का भविष्य में भी आचरण होता रहेगा । "मूल्यों के विद्यमान होने का मतलब यह है कि वे समाज के अनुभूत नियमों की अभिव्यक्ति के रूप में मनुष्य के मन और हरकत पर फलदायक और शक्तिशाली प्रभाव डाल देते हैं ।"[76] मूल्य मात्र किसी व्यक्ति या गुट से जुडा हुआ ही नहीं, इस से भी परे एक समाज या समूची मानवता की भलाई से जुडा हुआ है । इस विषय पर "ब्रिटानिका एनसैक्लोपीडिया" ऐसा बताता है - "मूल्य केवल काल्पनिक अनिवार्य नहीं है, अवसर

---

76. "Values exist in the sense that they are operative and effective in and on human minds and in human action, and find embodiment in the objective institutions of society."
Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962

वास्तविकता के साथ अकारण, अतिरिक्त जोडा हुआ है, लेकिन वे यथार्थ में स्वाभाविक ढाँचे ही हैं।"[77]

नैतिकता का सम्बन्ध समाज से है। व्यक्ति की भलाई से बढकर समूह के श्रेय का स्थान महत्व पूर्ण है। एक स्थिर समूह केलिए कुछ जानेमाने नियम उपलब्ध होते हैं। वे नियम व्यक्तियों के आपसी बर्ताव, उनकी संपत्ति की सुरक्षा, और स्त्री-पुरुषों के आपसी सम्बन्ध आदि सभी क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए बनाये गये हैं। समाज की लघु इकाई परिवार के माँ-बाप, बेटे-बेटियाँ सबों में एकता, परस्पर सहायता, और आपसी विश्वास आदि इन नैतिक नियमों में हैं। याने नैतिक मूल्यों की महत्ता यह है "व्यक्ति की अपेक्षा समष्टि पर बल देते हुए समाज की भलाई या कल्याण केलिए, और समाज की आंतरिक-सुरक्षा को बनाये रखने केलिए नैतिक-संहिताओं का निर्माण हुआ है।"[78] समाज की सुरक्षा की आड में व्यक्ति का जीवन भी सुरक्षित रह सकता है। इस केलिए व्यक्ति को मूल्यों की शरण लेनी चाहिए। समाज के अनेक सदस्य दूसरों के हितार्थ समाज-सेवा केलिए जब तैयार हो जाते हैं तब कई व्यक्ति सुधरते हैं और आपस में अंगीकार करने को बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार "अपने आप को शुद्ध करने केलिए नैतिक-मूल्य काम में आते हैं।"[79] याने नैतिक मूल्यों के आचरण से व्यक्ति का परिष्कार संभव है।

---

77. "Values are not mere subjective incidents, more or less gratuitously super added to fact, but are inherent in the structure of reality."
Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.962

78. "All known codes insist on some measure of internal peace and order and tend to sanction whatever helps to satisfy social needs and to ensure the group's survival, while censuring whatever disturbs the social peace."
Encyclopaedia Britanica,Vol.8, p.756

79. "As we extend our moral rules to wider groups, so we refine our notion of the human person."
Encyclopaedia Britanica, Vol.8,p.756

मूल्य सम्बन्धी विविध विचार

जेम्स हिलटन ने मूल्य सम्बन्धी अपने विचार यों व्यक्त किया है "मात्र लेन-देन की प्रक्रिया जीवन को सार्थक नहीं बनाती, इन सब से परे जीवन को धन्यता प्रदान करनेवाले और कुछ है "मूल्य"।[80]

"बेसिल द ग्रेट" ने अपना मूल्य सम्बन्धी विचार यों व्यक्त किया - "भलाई की हमेशा जीत होती है। जो नम्रता के बीज बोता है, वह मित्रता काटता है, जो दया का पौधा रोपता है सो वह प्यार का फल चखता है, तुष्ट मन पर खुशी की जो वर्षा होती है वह कभी भी असर नहीं बन जाता।[81]

गान्धीजी ने "सत्य को नैतिकता का मूल" कहा है।[82] अधार्मिकता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा - "नैतिक आधार के नष्ट होते ही हम अधार्मिक बन जाते हैं। नैतिकता का उल्लंघन करने वाला धर्म, धर्म कहलाने योग्य नहीं है। नैतिक व्यक्ति कभी भी क्रूर, असत्यवादी और अपवित्र नहीं बन सकता है।[83]

---

80. Surely there comes a time when counting the cost and paying the price aren't things to think about any more. All that matters is value - the ultimate value of what one does."
The International Dictionary of thoughts, p.748,year'69

81. "A good deed is never lost. He who sows curtesy; reaps frindship, he who plants kindness, gathers love; pleasure bestowed upon a grateful mind was never sterile, but generally gratitude begets reward."
Ibid, p.331

82. "Morality is the basis of things and truth is the substance of all morality".
Ibid, p.498

83. "As soon as we lose the moral basis, we cease to be religious. There is no such thing as religion over-riding morality. Man, for instance, cannot be untruthful, cruel or in continent and claim to have God on his side."
Ibid, p.498

"द वेल्ड बुक एनसेंक्लोपीडिया" में ऐसा परामर्श हुआ है "किसी वस्तु को खरीदने केलिए ग्राहक के पास मूल्य के रूप में देने केलिए रुपया या बदले की चीज़ नहीं है तो उस वस्तु को कोई मूल्य नहीं है।"[84]

नैतिक मूल्यों के बदलते परिप्रेक्ष्य

प्रत्येक समाज के अलग-अलग मूल्य होते हैं, जो देश, काल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। आचार-विचार, खान-पान, पहनाव ओढाव जैसे मनुष्य के प्रत्येक कार्य में देश-काल के अनुसार अलग-अलग मान्यताएँ होती हैं। एक समूह की मान्यता अवसर एक दूसरे समूह में हीनता समझी जाती है। उदाहरण केलिए विवाह के बारे में दुनिया-भर में कई प्रकार की मान्यताएँ रहती हैं। अपने परिवार के बाहर से सुयोग्य युक्त युवतियों को पति-पत्नी के रूप में चुनने की प्रथा अवसर रहती है। लेकिन अपने ही परिवार के, सगे-सम्बन्धियों के साथ शादी-सम्बन्ध कुछ समूहों में मान्य है। केरल के कुछ हिन्दू-उपजातियों में भाई और बहन के पुत्र-पुत्रियों की शादी चलती है। 'Cross-Cousin marriage' प्रथा मलयालम में "मुरप्पेण" की शादी मुरच्चेरुक्कन" के साथ नाम से मशहूर है। ऐसी शादी में, प्रत्येक पुरुष को उसकेलिए निश्चित "मुरप्पेण" के साथ ही शादी करनी है, इच्छा न होते हुए भी[85]। आस्ट्रलिया, दक्षिण अमेरिका, और दक्षिण आफ्रिका के कुछ भाग के लोगों में ऐसी अजीब प्रथा चलती है। इस से एक कदम आगे है हावाय, पेरु व मिश्र देश की हालत जहाँ भाई की शादी बहन के साथ चलती है। ऐसी शादी के उद्देश्य कुछ निराले-से लगते हैं। अपने वंश की पवित्रता

---

84. No article will have any value if those who want it have no money or commodities to offer in exchange for it."
The World Book Encyclopedia Vol.19, p.212, Year 1970

85. "One curious restriction on marriage is 'Cross-Cousin' marriage, meaning that a man marries the daughter of his mother's brother or of his father's sister.".
Customs and cultures Eugene A. Nida, p.101

बनाये रखने केलिए और धन-संपत्ति अपने कुटुम्ब के बाहर न जाने केलिए ऐसी शादी-प्रथा कायम रखती है । पुराने यहूदियों के बीच में ऐसी एक प्रथा चलती थी "एक निसन्तान पुरुष की मृत्यु हो जाने पर, उसके छोटे भाई को बडे भाई की विधवा से शादी कर के पुत्रोत्पादन करना चाहिए ।[86] "मनुस्मृति" में इस से मिलता-जुलता उपदेश मिलता है "बडा भाई छोटे भाई की पत्नी को अथवा छोटा भाई बडे भाई की पत्नी को निसन्तान की विपत्ति से बचाना उचित है ।[87] "कालिफोर्निया" में भी इस से मिलता एक नियम कायम है । वहाँ "किसी पुरुष की पहली पत्नी की मृत्यु हो जाने पर, अथवा उसमें बच्चा पैदा करने की क्षमता न रहने पर पत्नी के घरवालों को उस पुरुष केलिए और एक बहन देना चाहिए ।[88]

सैबीरिया की कोरयाक (Koryak of Siberia) समूह की शादी-प्रथा और भी विचित्र है । वहाँ एक युवक शादी करना चाहता है तो उसे कठिन परिश्रमी रहना चाहिए । युवति के पिता के सामने कठिन यातनाएँ सहकर अपनी परिश्रम-शीलता का प्रमाण प्रस्तुत करना पड़ता है । "ब्रिटीश गुवाना" में अराक्कों (Arawak of British Guiana) के बीच के युवकों की हालत और भी कठिन एवं रसप्रद है । वहाँ "शादी करना चाहनेवाले युवक को एक खेत साफ करके, एक घर बनवाकर और शराघात में अपनी दक्षता दिखाना अनिवार्य है ।[89]

---

86. व्यवस्था विवरण (धर्मशास्त्र) अध्याय 25, वाक्य 5, पृ.287

87. "ज्येष्ठो यवीयसो भार्यांयवीया नवाग्रज स्त्रीयं ।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्य नापदि ।।"
- मनुस्मृति अध्याय 9, पृ.401

88. "The Shasta Indians of california carried out a sororate practice, in that if the first wife died or proved unsatisfactory because of sterility, the wife's family must provide a sister".
Customs and Cultures Eugene A.Nida,p.102

89. "Among the Arawak of British Guiana a man must prove his worth by clearing a field,building a house, and showing his skill with the bow and arrow."
Ibid, p.103

एक पुरुष की, अनेक स्त्रियों के साथ शादी करने की प्रथा दुनिया के कई भागों में कई समयों तक प्रचलित थी और आज भी कहीं कहीं है । लेकिन एक स्त्री की अनेक पुरुषों की पत्नी रहने की प्रथा विरले ही मिलती है । तिब्बत में रहनेवाले "एस्किमो" लोगों में बहु-पति-प्रथा है । कडी सर्दी में जन्म लेते ही अक्सर अशक्त बच्चियाँ मर जाती है । इसलिए अनेक पुरुषों केलिए एक ही स्त्री रहने की प्रथा चलती है । उसी प्रकार दक्षिण भारत में, तमिलनाटु के नीलगिरि पहाडों पर रहनेवाले "तोडा" जनविभागों के बीच भी बहुपति-प्रथा चलती है । "तोडा" लोग गरीब होते हैं । जंगल से मिलते वनविभवों पर निर्भर करनेवाले वे खेती नहीं करते हैं । परिवार में एक बच्ची को वे जीने देते हैं । बडी गरीबी एवं दहेज-प्रथा के कारण दूसरी बच्ची का जन्म होते ही माँ-बाप उसके दूध मुँह में विषैली चीज़ें डालकर मारते हैं । कडी गरीबी के बीच, बडी रकम और आभूषण देने में असमर्थ परिवार नवजात बच्ची की हत्या करने को मज़बूर हो जाते हैं । संख्या में तोडा-स्त्रियों की कमी और अनेक पुरुषों केलिए पत्नी रूप में एक स्त्री रहने का यही रहस्य है । इस प्रकार "अनेक पुरुषों के साथ रहने से जब स्त्री हामिला बन जाती है तो परिवार के पुरुषों में सब से बडे भाई के नाम पर बच्चे की जिम्मेदारी सौंपने की प्रवृत्ति को मान्यता दी गई है[90]।"

स्त्रियों को यौन-स्वातंत्र्य देने की प्रथा कुछ देशों में है । "आफ्रिका के इला" लोग मृत लोगों के नाम पर जो त्योहार चलाते हैं तो शराब की मादकता में स्वतंत्र-यौन-संपर्क भी एक प्रथा के रूप में चलाते हैं । "एस्किमो के बीच, घर में अतिथियों के आने पर उन केलिए पत्नियों को सौंप देने की प्रथा उचित समझता है[91]।" "पश्चिम आफ्रिका के

---

90. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 7, पृ.206

91. "We assume that it is unnatural for a man to wish to loan his wife to guests, but Eskimo men have been doing just this for centuries and they do not seem to suffer from jealousy. They are expected to share there wives with certain men, and they in turn have the same privilege."
Customs and Cultures Eugene A. Nida, p.35

मोस्सी" जनविभाग की स्त्रियाँ अनेक पुरुषों के साथ यौन-संपर्क करती है । लेकिन बेलजियन कोंगो के कुन्टों (Nkundo of the Belgian Congo) लोगों की स्त्रियों को ऐसा स्वातंत्र्य नहीं है । कुन्टो स्त्रियाँ पर-पुरुष संपर्क करने पर, ऐसी नारियों को एक महा-सभा के सदस्यों के सामने खड़ा कर के चीटियों से डसवाते हैं और कई प्रकार की पीडायें दिलवाते हैं एवं मन्त्र पढ कर शुद्ध करने केलिए स्नान कराते हैं ।[92] यह ठीक है कि स्त्री-पुरुषों की शादी-प्रथा और आपसी आचरण दुनियाँ के कई भागों में कई प्रकार मे रहते हैं । ऊपर के विवाह सम्बन्धी एवं यौन सम्बन्धी आचरणों के बारे में सोचते समय "एनसेक्लोपीडिया ब्रिटानिका" का यह परामर्श ठीक मानना पड़ता है - "बर्बर समाज के नैतिक फैसले में और आधुनिक युग के नैतिक फैसले में आकाश-पाताल का अन्तर है ।[93]"

चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि अधिकांश समूहों में निषिद्ध हैं । इन्हें कठिन पाप के रूप में कुछ लोग मानते हैं । लेकिन पाप व पुण्य का विवेचन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर माना जाता है । सार्वलौकिक गलतियों के रूप में दो बातों को मानते हुए "इ.ए. निडा" ने लिखा है - "अब तक की जानकारी के अनुसार सार्वलौकिक दो गलतियाँ है - हत्या और व्यभिचार ।[94]"

---

92. "The Mossi people of West Africa are relatively tolerant of wives having lovers, while the Nkundo of the Belgian Congo have traditionally imposed heavy sanctions against such women, including torture, public exposure, being bitten by ants, and magical washing and purification by red pepper mixed with water."
Customs and Cultures: Eugene A. Nida, p.107

93. "There are some speres of actions in which moral judgment in primitive societies is marked by different form that in modern society."
Encyclopaedia Britanica Vol.15, p.821

94. "So far as is known, there are only two Universally recognised wrongs - that is, actions which are disapproved in all societies. These are murder and incest.
Customs and Cultures Eugene A. Nida, p.108

शिशु वध का समर्थन करनेवाले समूह हैं और उसी प्रकार बूढों की हत्या करनेवाले लोग भी हैं । ऐसे लोग, समाज केलिए बोझ और निष्प्रयोजकों को मारना उचित समझते हैं । ऐसे है उनके विचार - "आबादी की वृद्धि को रोकने केलिए यदि पिता अपने दूध मुँह बच्चे की हत्या करता है तो उस समाज की दृष्टि में वह दोषी नहीं है ।"[95] हत्या के समान चोरी भी पाप माना जाता है । अपनी चीज़ों के सिवा दूसरों की चीज़ें लेना चोरी मानी जाती है । गरीब, जीने केलिए और रास्ता न देखकर अमीरों की खेती से नारियल, अनाज आदि चुराने को बाध्य हो जाते हैं । लेकिन कुछ ऐसे गरीब भी हैं जो भूख से मरने पर भी चोरी नहीं करते हैं । व्यभिचार भी एक प्रकार की चोरी है । इस विषय में कस्टम्स एन्ड कलचर्स" में ऐसा बताया गया है - "कई ऐसे अशिक्षितों का समूह हैं जहाँ व्यभिचार भी एक प्रकार की चोरी मानी जाती हैं, क्योंकि अपनी चीज़ के सिवा दूसरे को हड़पना चोरी ही है, इसलिए दोषी व्यक्ति के द्वारा उस स्त्री के पति को शुल्क देना चाहिए ।"[96] धर्मशास्त्र में परमेश्वर के द्वारा दिये गये दस नियमों में छठे के रूप में यह निर्धारित किया गया है "तू व्यभिचार न करना"[97]। परस्त्रीगमन को जानेवाले पुरुषों को चेतावनी देते हुए वात्स्यायन मुनि के उपदेश "हिन्दी काम सूत्र" के द्वारा यों दिया गया है "परस्त्री के साथ गमन करने की इच्छा करने से पहले यह सोचना चाहिए कि अभीष्ट स्त्री

---

95. "In some societies both literate and preliterate, infanticide has ben regarded as no more than a painful necessity, as morally right in order to mitigate pressure of population on subsistence. In such societies the decision whether a new born infant should be deprived of life is usually left to the father and society casts no blame upon him for his decision."
Encyclopaedia Britanica Vol.15, p.821

96. "In many non literate societies adultery is classified asa kind of stealing, or appropriating rights which are not one's own, and accordingy the guilty person must pay a fine to the husband."
Customs and Cultures : Eugene A. Nida, p.107

97. "You must not commit adultery."
The Book : Exodus 20 : 14, p.83

मिल सकेगी या नहीं, उसे प्राप्त करने में प्राणों का संकट तो नहीं उपस्थित होगा । उसे अपने वश में कर लेने के बाद मेरा प्रभाव कैसा रहेगा और मुझे लाभ क्या होगा ?[98] व्यभिचार से बचने का उपदेश देते हुए "मनुस्मृति" में कहा गया है "पति-पत्नी मृत्यु तक व्यभिचार दोष से बचना उचित ही है । यही है स्त्री-पुरुष धर्म ।"[99] व्यभिचार, परस्त्री गमन या परपुरुष गमन से कई प्रकार के रोग होने की चेतावनी आधुनिक खोजों ने दी है - "समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में "एड्स-रोग" फैल जाने के कारणों पर वैद्यशास्त्र ने खोज की है । व्यभिचार के नाना रूपों से यह मारक रोग इतना फैल गया है कि जनसंख्या के कई जन इस के शिकार हो गये हैं ।"[100] व्यभिचार इतना दोषकर होते हुए भी हमारे पुराने सभी शहरों, जैसे आगरा, बम्बई, कलकत्ता में सरकार लाइसेन्स देकर वेश्यालय चलाते हैं । जीवन के विभिन्न स्तर के लोग अपने हितानुसार अनियंत्रित जीवन बिताने का तरीका समाज में आज सर्वत्र फैल गया है । व्यभिचार करती नारी की निन्दा करती हुई "मनुस्मृति" में ऐसा बताया गया है - परपुरुष के साथ लैंगिक कार्य

---

98. "तेषु साध्यत्वमनत्ययं गम्यत्वमायति वृत्ति चादित एव परीक्षेत" ।
- हिन्दी कामसूत्र, पृ.511.

99. अन्योन्यस्या व्यभिचारो भावे दामरणान्तिक: ।
एषधर्म: समासेनज्ञेय: स्त्री पुंसयो: पर: ।।
- मनुस्मृति, 9,101, पृ.410

100. "Researchers are still pondering why AIDS have spread so rapidly through so many sectors of the population. Their tentative conclusion is that the disease was abetted by three related phenomena; Prostitution, sex with many partners in crowded urban centers and a high proportion of the population in the sexually active age rage."
The End of Denial : Michael S. Serrill, TIME - The Weekly New Manazine, p.42

करती नारी दुनिया में घृणित और कई रोगों के शिकार बन जाएगी । अगले जन्म में वह सियार के रूप में जन्म लेगी भी ।"[101]

मूल्य देश-काल के अनुसार परिवर्तित होते हैं । पूंजीवाद, दास-प्रथा, स्त्री-पुरुष-भेद आदि भारत में एक ज़माने में माने गये थे । उन दिनों स्त्री-पुरुषों के प्रवर्त्तनों में विभाजक-रेखा खींची थी । इस विषय पर "मानव समाज" में श्री राहुल सांकृत्यायन ने ऐसा प्रतिपादित किया है - "पुरुष लडाई करते हैं मछली और जानवर का शिकार करने जाते हैं, खाद्य-सामग्री और अपेक्षित हथियार प्रस्तुत करते हैं । स्त्रियाँ घर का काम्काज देखती है - खाना-कपडे का इन्तजाम रसोई, बुनाई, सिलाई का काम करती हैं । अपने-अपने कार्यक्षेत्र में स्त्री-पुरुष का पूरा आधिपत्य है - जंगल का स्वामी पुरुष है, घर के भीतर स्त्री का राज्य है ।"[102] उसी प्रकार शिक्षा-दीक्षा भी समाज के उन्नत कुलजों केलिए निश्चित थी । निम्न वर्गीय शिक्षा प्राप्त करने से रोके हुए थे । इस विषय पर "बी·कुप्पुस्वामी" का परामर्श यों है - "पुरोहित, राजा, सामन्त, धन-सम्पन्न-व्यापारी आदि तक शिक्षा प्रथा सीमित थी ।"[103] उसी प्रकार भारत में स्त्रियों की हालत सदियों तक नरकपूर्ण थी । "पिता, पति व पुत्र के आश्रय में बचपन, यौवन एवं बुढापे में रहती वह कभी भी स्वातंत्र्य की चाह न रख सकती थी ।"[104] स्त्री की यातनाओं का परामर्श

101· "व्यभिचारात्तु भर्तृ:स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम
सृगाल योनिं चाप्नोति पाप रोगैश्च पीड्यते ।"
- मनुस्मृति (मलयालम) 9:30

102· "मानव-समाज राहुल सांकृत्यायन, पृ·2।

103. "In ancient India literacy was confined to the small group of priests, kings, nobles and prosperous merchants."
Social change in India B. Kuppuswamy, p.312

104· "पिता रक्षति कौमारे, भर्तारक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ।"
- मनुस्मृति (मलयालम) 9:3, पृ·391

"सोश्यल चेंज इन इंडिया" में इस प्रकार मिलता है - "बाल विवाह, पुनर्विवाह की रोक, पर्दा-प्रथा, बहु-पत्नी प्रथा, सति-प्रथा आदियों के कारण बी·सी· 20 से सन् 1800 तक की भारतीय-नारियों की हालत दयनीय थी ।"[105]

दुनिया के विभिन्न प्रदेश के लोगों में आचरित - शादी, यौन, चोरी, हत्या, व्यभिचार, खान-पान, शिक्षा-दीक्षा और नारी-शोषण सम्बन्धी उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुनियाँ के कई भागों में एक एक प्रकार की मान्यता या हीनता एक ही आचरण केलिए उपलब्ध है । याने एक सामान्य, सर्वसम्मत मूल्य की घोषणा असंभव है । अत: कहना समीचीन होगा - "नैतिक मूल्यों की अवधारणा समाज-सापेक्ष है ।"[106] अब यह स्पष्ट हो गया है कि मूल्य काल-सापेक्ष और समाज-सापेक्ष है । मूल्यों के मापदण्ड में देश और काल के अनुसार विभिन्नताएँ होते हुए भी एक रूपता अवश्य है । मूल्यों में चाहे विभिन्नता हो, या एक रूपता "मूल्य" का तिरस्कार कोई नहीं कर सकता है । इस सम्बन्ध में, उदाहरण के तौर पर "एनसेक्लोपीडिया ब्रिटानिका" में ऐसा प्रतिपादन मिलता है "मानव-जीवन में मूल्यों की महत्ता का निराकरण कोई भी नहीं कर सकता ।"[107]

---

105. "For nearly 2000 years from 20 B.C. to A.D.1800 the position of woman steadily deteriorated though she was fondled by the parents, loved by the husband and revered by her children. The revival of sati, the prohibition of remarriage, the spread of purdah and the greater prevalence of polygamy made her position very bad."
Social change in India B. Kuppuswamy, p.262

106. "Moral concepts and rules are closely related to the structure of society and morality is therefore relative - in the sense that, as the ends of each society vary. So do the standards of right and wrong."
Encyclopaedia Britanica, Vol.15,p.821

107. "It is generally agreed that values cannot be denied existence or reality in any world that can exist for man. They must, it would seem exist in several senses."
Encyclopaedia Britanica, Vol.22, p.963

मूल्य-दृष्टि के विभिन्न स्तर

संसार भर के लोगों केलिए एक ही ढंग का जीवन बिताना और जीवन के प्रति समान अवधारणा रखना नामुमकिन है । परिस्थिति के अनुसार मनुष्य के आचार विचार में, अवधारणाओं में भिन्नता अनिवार्य है । मानव-मूल्यों की धारणाओं में भी असमानताएँ दृष्टव्य हैं । उनकी मूल्य-दृष्टि के विविध स्तरों पर अब हम प्रकाश डालेंगे ।

भौतिकवादी मूल्य दृष्टि

"भौतिकवाद एक दार्शनिक सिद्धान्त है, जिस के अनुसार मनुष्य की सभी आवश्यकतायें भौतिक हैं ।"[108] भौतिकवाद के विचारकों के रूप में ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के एपिकुरस, स्टोइक आदि से लेकर आधुनिक काल के कई विचारक तक उपलब्ध हैं । "प्राचीन भौतिकवाद के अनुसार संसार अविच्छेद्य रूप से परस्पर गूँथी हुई दो चरम सत्ताओं का परिणाम है, जिन्हें "भूत" (matter) और "शक्ति" (Energy) कहा गया है । किन्तु समसामयिक विज्ञान ने अन्तिम रूप से सिद्ध कर दिया है कि भूत शक्ति से तत्वत: भिन्न नहीं है, वह शक्ति का घनीभूत रूप मात्र है । अत: अब शक्ति ही सृष्टि का मौलिक उपादान सिद्ध होती है

---

108. Materialism, a philosophical theory that all things are material, that matter is the fundamental explanations of all existence."
New Master Pictorial Encyclopedia, Vol.VI, p.921

और यह शक्ति भी अन्तिम विश्लेषण में, नितान्त आकाशीय, अग्राह्य, असंवेद्य और गणितीय होकर रह गई है । अत: आधुनिक चिन्तकों की दृष्टि में "भौतिकवाद" शब्द पुराना पड चुका है ।[109] भौतिकवाद के बारे में "द यूनिवर्सल स्टान्डेर्ड एनसैक्लोपीडिया" ने विशद अध्ययन किया है जिस पर विचारना समीचीन होगा । उसमें इस प्रकार प्रतिपादित है

"भौतिकवाद में पदार्थ की विद्यमानता या गुणबोध निश्चित करता है । पदार्थ या वस्तु यथार्थ है और चेतना के प्रत्यक्ष-ज्ञान-विषय द्वारा नाडीमण्डल में जो प्राकृतिक और रासायनिक परिवर्तन होते हैं उन्हें वह व्यक्त करता है । इस प्रकार भौतिकवाद मायावाद या कल्पनावाद, जो मन की सर्वोपरिता है, का प्रतिकूल है एवं पदार्थ को मनका विषयाश्रित-करण माना है ।"[110]

भौतिकवाद में पदार्थ प्रथम और प्रधान है । मन या चेतनता उस पदार्थ से निकलता है । याने मनुष्य का मन इच्छाशक्ति, मानव इतिहास की गति ये सब भौतिक प्रतिक्रियाओं के अनुसार चलता है । यहाँ यह समस्या उठती है कि भौतिक पदार्थों से विचार और विकार उठते है अथवा विचार से भौतिक वस्तुओं की सृष्टि होती है ? सदियों से भौतिक विचारक और आध्यात्मिक विचारकों के बीच में इस विषय पर चर्चाएँ चल रही हैं । हेगल ने ऐसा बताया " प्रपंच की प्रगति की नींव चिन्ताएं हैं ।" मार्क्सियन चिन्तकों के अनुसार भौतिक वस्तुओं के

---

109. हिन्दी साहित्यकोश भाग I, पृ.465, तृ.सं.1985

110. "Materialism, the philosophical doctrine, which resolves all existence into matter or into an attribute or effect of matter. It makes matter the ultimate reality, and explains the phenomenon of consciousness by physio chemical changes inthe nervous system. Materialism is thus the antithesis of idealism, which affirms the supremacy of mind and characterizes matter as an aspect or objectification of mind."

The Universal Standard Encyclopedia, Vol.15, p.5613, Year 1957

क्षेत्र में होते परिवर्तनों के फलस्वरूप चिन्तामण्डल में परिवर्तन आये हैं। यहाँ चिन्ता और बुद्धि के बारे में हम सोचने को बाध्य हो जाते हैं। "चिन्ता और बुद्धि मनुष्य-मस्तिष्क की सृष्टि है। मनुष्य ही प्रकृति की सृष्टि है। हेगल के विचार में प्रपंच सृष्टि के पहले ही उसके कहीं बाहर हुई चिन्ताओं का प्रतिफलन है भौतिक वस्तुएं और उसके पलन।"[111] इसलिए प्रपंच सृष्टि के पीछे की अदृश्य-शक्ति-ईश्वर पर कुछ लोग विश्वास करने को बाध्य हो जाते हैं। लेकिन भौतिकवाद ईश्वर, आत्मा, परमात्मा आदि पर विश्वास नहीं रखता है। याने भौतिकवाद धर्मविरोधी है। ईसाई-धर्म जैसे संघटित आध्यात्मिक सिद्धान्तों का विरोध भौतिकवादी करते हैं। "धर्म विरुद्ध भौतिकवाद के व्याख्यातओं में अठारहवीं शताब्दी के "डेनिस डिडेरोट", "पॉल हेन्री डिट्रिच होलबा", "जूलियन अफरो डी लामेटैर" आदि आते हैं। उसी प्रकार क्रान्तिकारी राजनैतिक दार्शनिकों के रूप में विख्यात कार्लमार्क्स, फ्रेडरिक एन्गलस और निकोला लेनिन आदि ने ऐतिहासिक भौतिकवाद का समर्थन करते हुए कहा "हर एक समय में कायम रहती एवं ज़रूरती चीज़ों के उत्पादन करती आर्थिक व्यवस्था ही हर एक युग के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं बौद्धिक इतिहास को रूपायित करती है।"[112]

भौतिकवाद या जडवाद अथवा भोगवाद की चिन्ता भारत में प्राचीन काल से शुरू हुई थी। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि सभी ग्रन्थों में भौतिकवादी विचार उपलब्ध है। भारत में इसकी पुरातनता के बारे में "भारतीय चिन्तन परम्परा" में इस प्रकार व्यक्त

---

111. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 6, पृ.666

112. "Antireligious materialism is motivated by a spirit of hostility toward the theological dogmas of organized religion, particularly those of christianity. Notable among the exponents of antireligious materialism were the 18th century philosophers Denis Diderot, Paul Henri Dietrich D' Holbach and Julien Offroy de Lamettrie. Historical materialism, as set forth in the writing of the revolutionary political philosophers Karal Marx, Friedrich Engels and Nekolai Lenin, is a doctrine which maintain ..... artistic history of the epoch." The Universal Standard Encyclopedia,p.5613

किया है "भारत में भौतिकवाद का उदय वैदिक प्राकृतिक धर्म और उससे संबंधित कर्मकांडों के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप में हुआ । यह सच है कि एक पूर्णरूप से विकसित दर्शन प्रणाली के रूप में भौतिकवाद ईसा पूर्व सातवीं और दूसरी शताब्दियों के मध्य में प्रकट हुआ । किन्तु यह मानने केलिए आधार मौजूद है कि ईसा पूर्व दसवीं या नवीं शताब्दी में ही भौतिकवादी विचार कम से कम प्रारंभिक रूप में मौजूद थे ।"[113] भोगवाद ऐशो आराम से भरी-पूरी ज़िन्दगी को तरजीह देता है । भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों में भोगवादी दृष्टव्य है । लेकिन यह तो सत्य है कि सुख सुविधाओं की हिफाज़त मनुष्य को पूर्ण सुख नहीं प्रदान करता है । इस प्रचुरता के नीचे रिक्तता छिपी हुई है । भौतिकवाद के दो अन्य मित्र हैं परिणामवाद और नास्तिकता । इस के बारे में ऐसा परामर्श मिलता है "आधुनिक काल तक आते आते भौतिकवाद को परिणामवाद की दोस्ती मिली जिस में नास्तिकता या अनीश्वरवाद का समर्थन किया जाता है ।"[114] परिणामवाद और भौतिकवाद दोनों के मिलन से मनुष्य में आये परिवर्तनों के बारे में "देवेन्द्रइस्सर" ने ऐसा बताया है "डार्विन ने मनुष्य को पशु का शरीर दिया और फ्रायड ने पशु की कामवृत्ति दी । मनुष्य इस नये ज्ञान की रोशनी में प्रचलित मूल्यों को त्याग रहा है । मूल्य से पृथक होकर मनुष्य का रूप - हत्यारा, चोर, डाकू, लुटेरा, दलाल, वेश्या, समलैंगिक, व्यभिचारी, आत्मरति का शिकार, परोत्पीडक, अपराधी आदि हो सकता है ।"[115]

---

113. भारतीय चिन्तन परम्परा : के.दामोदरन, पृ.93

114. "Philosophical materialism in modern times has been largely influenced by the doctrine of evolution, and may indeed be said to have been assimilated in the wider theory of evolution, which goes beyond the mere antitheism or atheism of materialism and seeks positively to show how the diversities and differences in creation are the result of natural as opposed to supernatural processes."
The Universal Standard Encyclopedia, Vol.15, p.5613

115. साहित्य और युगबोध देवेन्द्र इस्सर, पृ.7-15, प्र.सं.1973

मार्क्सवादी मूल्य-दृष्टि

सन् 1834-1839 ई॰ में पेरिस के गुप्त क्रांतिकारी संघटनों द्वारा साम्यवाद या कम्यूनिसम गढ़ा गया था। कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एन्गिल्स इस विचार धारा के पोषक थे।

1913 में लेनिन भी साम्यवाद के पोषक रहे। मार्क्सियन मूल्य का विश्लेषण "विश्व विज्ञान कोश" में इस प्रकार मिलता है "उन्नीसवीं सदी में वर्तमान जर्मनी का दर्शनशास्त्र, इंग्लैंड का अर्थशास्त्र, फ्रान्स की क्रांति के सिद्धान्त आदियों को पल्लवित करके मार्क्स और एन्गलस ने मार्किसयन सिद्धान्त को स्थापित किया।"[116] भौतिकवाद के विकसित रूप मार्क्सवाद में भौतिक जगत् के जीवन के परे और किसी जगत् का संकल्प नहीं है। ईश्वर, आत्मा, परलोक आदि संकल्प इस में नहीं है। मानव-मूल्यों के विवेचन का आधार अर्थ ही है। मार्क्सवाद और समाजवाद दोनों का विश्लेषण करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में ऐसा परामर्श मिलता है "वैयक्तिक के बदले सामूहिक अथवा सार्वजनिक उत्पादन, प्रबन्ध और उपभोग के सिद्धान्त पर आधारित समाज व्यवस्था, साम्यवादी-समाज-व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है। समाजवाद में प्राय: केवल उत्पादन के साधनों का सामाजीकरण होता है। समाजवाद प्राय: शान्तिमय तथा लोकतांत्रिक उपायों से क्रांति करने के पक्ष में है, जब कि साम्यवाद एतदर्थ बल के प्रयोग में अधिक विश्वास करता रहा है। आजकल साम्यवादी प्राय: समाजवाद को क्रान्ति का प्रथम सोपान तथा साम्यवाद को अन्तिम सोपान मानते हैं।"[117]

---

116. विश्वविज्ञान कोश (मलयालम) भाग 9, पृ॰591

117. हिन्दी-साहित्य कोश भाग 1, पृ॰917

मार्क्सवादी चिन्तन का केन्द्र-बिन्दु मानव है । इसलिए मनुष्य की विषमताओं से मुक्त करने केलिए उसे भौतिक वस्तुओं से सुसज्जित करना चाहिए । यह सिद्धान्त मेहनत की महत्ता पर बल देता है जिस में पूँजी का स्वामी पूँजीपति नहीं बल्कि परिश्रम करनेवाला मज़दूर है ही क्योंकि उसने ही कठिन परिश्रम से कच्चे माल से उपयोगी वस्तुएँ तैयार कर पूँजी को जन्म दिया है । परिश्रमी मानव के स्थान पर यंत्रीकरण की प्रक्रिया का घोर विरोध साम्यवादी करते हैं । क्योंकि परिश्रम करनेवाले मनुष्य को वेतन मिलना चाहिए जिससे वह अपनी जीविका चलावे । संसार की जनता आज भी भूखे-नंगे, भवन रहित हैं । मज़दूरों के रक्षक मार्क्स के शव-संस्कार के समय लंदन के हाईगेट कब्रिस्तान पर 17 मार्च 1883 में एंगेल्स ने भाषण दिया - "जिस तरह डार्विन ने प्राणिजगत् के विकास के सिद्धान्त का आविष्कार किया था, उसी तरह मार्क्स ने मानव-इतिहास के विकास के सिद्धान्त का आविष्कार किया अर्थात् राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म या किसी भी दूसरे विषय की ओर ध्यान देने से पहले मनुष्य को खान-पान, कपडा और वास-घर चाहिए । इसलिए, जीवन की मौलिक आवश्यकताओं का उत्पादन और आर्थिक विकास की तत्कालीन अवस्था वह नींव है, जिस पर राष्ट्रीय संस्थाएँ, कानूनी व्यवस्थाएँ, कला और बल्कि लोगों के धार्मिक विचार बनाये गये हैं, और इसलिए उनकी व्याख्या को उन्हीं पर आधारित करना होगा ।"[118] सौ वर्ष के बीतने के बाद भी मनुष्य की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति कई देशों में नहीं हो रही है ।

---

118. मानव-समाज - राहुल सांकृत्यायन, सातवाँ संस्करण 1986 लोकभारती प्रेस, इलाहाबाद, पृ.274

साम्यवाद वर्ग-भेद-रहित समाज का संकल्प करता है । इसलिए श्रमजीवी अपने उद्धारक के रूप में इस पक्ष का समर्थन करते हैं । प्रत्येक व्यक्तिके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए सुख के साधन कमाने का विधान इस में है । शोषक, बुर्जुआ, पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध शोषित, श्रमिक, गरीब साधारण लोगों का नेतृत्व साम्यवाद करता है । विश्व के कई देश, जैसे चीन, रूस, जर्मनी, पोलन्ड आदि साम्यवादी शासन में आये । कहीं कहीं उनके पैर फिसल चुके ।

"मार्क्स वाद और रामराज्य" में ऐसा बताया गया है

"मार्क्सवाद में यह भी कहा जाता है कि वहाँ किसी के पास कुछ चीज़ नहीं रह जाएगी, फिर कौन किस की क्या चीज़ लूटेगा ? किसी के द्वारा किसी राष्ट्र के शोषण की भी बात नहीं आएगी, क्योंकि समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृता के दृष्टिकोण से जैसे एक व्यक्ति दूसरे का पोषक होगा, वैसे ही, एक राष्ट्र, एक वर्ग भी दूसरे राष्ट्र, दूसरे वर्गों का शोषक न होकर पोषक ही होगा ।"[119]

आदर्शवाद और साम्यवाद दोनों विरुद्ध कोटि के विचार रखते हैं । आज की दुनिया इन दोनों वादों के संघर्ष की साक्षी है । "भारतीय चिन्तन परम्परा" में आदर्शवाद और साम्यवाद दोनों पर दृष्टिपात करते हुए यों बताया गया है "आदर्शवाद और धर्म के समर्थक जहाँ यह सोचते हैं कि यदि व्यक्ति नैतिकता के शाश्वत मूल्यों का अनुसरण करने लगे तथा शिक्षा और प्रचार के द्वारा जनता के मन में नैतिक एवं धार्मिक मूल्य जमा किये जायें, तो मानव-समाज श्रेष्ठतर बन जाएगा, वहाँ यांत्रिक भौतिकवादी तथा कठमुल्ले मार्क्सवादी यह दावा करते हैं कि यदि पूँजीवाद का उन्मूलन कर दिया जाय और उसके स्थान पर समाजवादी समाज की स्थापना कर दी जाय,तो नैतिक तथा नीतिशास्त्रीय मूल्य फलने-फूलने लगेंगे ।"[120]

---

119. मार्क्सवाद और रामराज्य - श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज, पृ.418
120. भारतीय चिन्तन परम्परा-के.दामोदरन, पृ.528

विज्ञान और मानव मूल्य

विज्ञान के चमत्कार ने आधुनिक जीवन के मुखौटे को बदल दिया है । प्रकृति के प्रकोपों को देखकर डरा हुआ, अधोमुख मनुष्य प्रकृति के नियंत्रक के रूप में आ गए । अपनी विजय यात्रा में साथ देने केलिए भोगवाद और मार्क्सवाद आये जिन्होंने एकत्रित होकर यह घोषणा की कि ईश्वर, धर्म, मोक्ष आदि बेकार हैं । तर्क और कठिन परीक्षण के बाद ही विज्ञान किसी वस्तु को मूल्यवान मानता है । बुद्धि एवं तर्क के परे और किसी शक्ति में विज्ञान का विश्वास नहीं है । पदार्थ की सत्ता को विज्ञान ने प्राधान्य दिया है । विज्ञान की प्रगति के द्वारा मानव में आये परिवर्तनों पर प्रकाश डालते हुए शुकदेव प्रसाद ने ऐसा लिखा है - "आज मानव को सुख-सुविधाएँ उपलब्ध हैं, सब उसे विज्ञान ने सुहैया किया है । आज दुनियाँ सिमट गई है, मिनटों में धरती के किसी कोने से संचार संभव है, धरती का कोई कोना, आकाश और पाताल, अजाने-अछूते नहीं रहे, जहाँ मानव ने अपने चरण-चिन्ह न छोडे हों, अपनी विजय पताका न फहराई हों ।"[2]

वैज्ञानिक मूल्य यंत्र-जन्य मूल्य है । विज्ञान की प्रगति ने मनुष्य जीवन को यांत्रिक जीवन प्रदान किया । सुबह से रात तक जैसे उसका जीवन यांत्रिक चलता है । यन्त्र का मस्तिष्क या हृदय नहीं है । उसी प्रकार यांत्रिक-सभ्यता में हृदय पक्ष का महत्व भी नहीं है । शत्रु या मित्र की चिन्ता भी यन्त्र को नहीं है । आज के मनुष्य की सभी विसंगतियों का कारण यांत्रिक जीवन है । इस प्रकार यांत्रिक जीवन बितानेवाले मनुष्य को, भरे-पूरे समाज के सदस्यों के बीच रहते हुए भी

---

[2]. विज्ञान और मानव-मूल्य शुकदेव प्रसाद - "आजकल" पृ.27 नवम्बर 1982

एकान्तता और शून्यताबोध मथते हैं । उसका अपना व्यक्तित्व नहीं है । वह भी, महासागर का एक अणु मात्र है । इंजन का पुर्जा बदल कर या यंत्र के मर्मत करने के जैसे पारिवारिक या सामाजिक सदस्यों को बदल कर नई मैत्री स्थापित करके पुराने को त्यागने की प्रवृत्ता वर्तमान युग में आ गई है । याने पुरानी वस्तुओं को कुडे में डालने के जैसे माँ-बाप, पति-पत्नी या भाई बन्धुओं को छोडने की एक सभ्यता मानव-समाज में पनप रही है । पदार्थ की सत्ता को विज्ञान ने प्रधानता दी है । इसलिए आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता ने, आत्मा के स्थान पर शरीर ने और मोक्ष के स्थान पर भोगवाद एवं व्यक्ति स्वातंत्र्य ने अपना अधिकार जमा लिया है ।

विज्ञान की प्रगति ने देशों के बीच की दूरी कम कर दी, पर मनुष्य और मनुष्य के बीच का फासला बढ गया है । याने विज्ञान की प्रगति के साथ साथ मनुष्य-मनुष्य का सम्बन्ध भी टूट गया । "आज के आदमी की नियति और आस्था का बिन्दु" शीर्षक निबन्ध में इस का परामर्श यों मिलता है - "सब ओर अनिश्चित वातावरण है, कार्यों के प्रति एक गहरा संशय, सम्बन्धों के प्रति अरुचि, उदासीनता और अपने आप पर से उठता विश्वास, यह सब आदमी के आस्थाबिन्दुओं को अक्षुण्ण नहीं रख पाते । रात को तनाओं से भरकर सोया हुआ व्यक्ति जब सुबह जागता है, तो उसे लगता है, कोई एक और आस्था-बिन्दु उसने कहीं खो दिया है नींद की खुमारी में, रात के सपने में या अपने सजगता के अभाव में । और, अपने इस खोये हुए पर वह गहरा असन्तुष्ट हो उठता है ।"[122] विज्ञान के पीछे पडती नव-पीढी, संसार-भर में एक प्रकार की अराजकता व निराशा का अनुभव कर रही है । धर्म एवं नीतिसम्बन्धी आस्था पर विज्ञान का विश्वास नहीं है । इतना ही नहीं धार्मिक सिद्धान्तों का, गला घोंटने में, विज्ञान लगा हुआ है ।

---

122. आज के आदमी की नियति और आस्था का बिन्दु
रघुवीरसिंह - नई धारा, पृ.6, सितम्बर-अक्टूबर 1975

ईश्वर और धर्म की मृत्यु के उद्घोषणा में विज्ञान ने अपनी सफलता पायी है ।

नैतिक मूल्यों के पतन में विज्ञान की प्रगति का अपना महत्व है । विज्ञान, वित्त और विज्ञापन ये तीनों साथ साथ चलते हैं । अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में विज्ञान की प्रगति हुई जिस से प्रकृति के करीब सभी चीज़ों के नियंत्रक के रूप में वह आया । एक बटन दबाने पर हवा आयी, रोशनी फैल गई, लेकिन आज पंखे के नीचे बैठनेवाला मनुष्य पसीने से तर बैठता है और मन की प्रकाश-धारा बुझ-सा विवश बैठता है । टेलिफोण द्वारा सुदूर बैठनेवालों से बोल पाया, दूरदर्शन ने बोलने वाले का चेहरा भी दिखा दिया । लेकिन सुनी हुई बात और देखा हुआ चित्र अपने से ओझल हो गया । बिना आदमी के, हवाई जहाज शत्रु के सिर के ऊपर से उडा कर बम की वर्षा कर सकता है; वर्षा, आन्धी, भूचाल आदि को बहुत पहले जान सकता है, पर मनुष्य स्वयं चलता-अग्नि-पर्वत बन गया है । माता के गर्भ में पडे शिशु का लिंग-निर्णय कर "बच्ची है तो उसकी हत्या गर्भाशय में ही करने की कला भी विज्ञान ने मनुष्य को सिखा दी । पर जन्मा सुन्दर बेटा, पल कर मन्द-बुद्धि या लंगडा निकलता है ।

युवा पीढी के कानों में विज्ञापन ने मनमोहक मंत्र सुनाये । विज्ञापन के जादू से गोबर को सोना बनाकर बेच सकता है । वस्तु और व्यक्ति एक दूसरे का बदल, बनते जा रहे हैं । शासकों ने युवा-पीढी के कानों में गर्भ-निरोध द्वारा आबादी की वृद्धि को रोकने का मंत्र फूंक दिया । स्कूल, कालेज के छात्र-छात्राएँ बिना विवाह किये माँ-बाप बनते जा रहे हैं । पार्कों के पेड-पौधों को, कालेज के आंगनों के पौधों को, बस्टाप के प्रतीक्षालय को, सिनेमा शाला की कुर्सियों को, जीभ होती तो

वे क्या-क्या सत्य बोल देती ! ! अविवाहितों के पवित्र-जीवन को गर्भनिरोधक सामग्रियों ने कलंकित, शांतिरहित और समस्यापूर्ण बनाया तो वी·सी·आर·, वी·सी·पी· एवं सिनेमा ने युवकों को गुमराह भी किया । विज्ञापन में देखती वस्तुएँ असली एवं सच्ची जानकर नशीले पदार्थों - शराब, गाँजा-बीडी, ब्रौन-शुगर आदि - के गुलाम बनती जा रही हैं युवा पीढी ।

विज्ञान ने एक वित्तीय सभ्यता को भी जन्म दिया । भौतिक वस्तुएँ अपनाने के मोह में मनुष्य भटक रहा है । तकनीकी विकास औद्योगीकरण और शास्त्रों के आविष्कारों से मनुष्य की भौतिक प्रगति अवश्य हुई । घर-भर संपत्ति उसने जमा की । लेकिन वह आज अपने में छोटा हो गया, सिकुड गया, कायर बन गया और शंकित भी । इस प्रकार अन्य भौतिक-चीज़ों के बीच में मनुष्य यंत्र का एक पुर्जा बन गया, हृदयहीन एक गुडिया बन गया । याने चेतनावाला वह एक यंत्र-मानव बन गया है । इस यांत्रिक सभ्यता को हम विज्ञान की सभ्यता या वित्तीय-सभ्यता पुकार सकते हैं । वित्तीय सभ्यतावाले मानव के बारे में डॉ· कैलाश वाजपेयी ने यों लिखा है - "समस्त मानवीय सम्बन्ध अब केवल वित्तीय स्तर पर बनते हैं, अन्य सभी माध्यमों को या तो नगण्य घोषित कर दिया गया है, अथवा फिर यांत्रिकता से जकडे हुए नये समाज में वे किसी अज्ञात-प्रक्रिया द्वारा स्वत: डूबते जा रहे हैं । आज के व्यक्ति को यह नहीं ज्ञात कि वह चाहता क्या है । लम्बे अर्से तक वह सभ्य समाज के विशाल मरुस्थल में अपना स्थान खोजता रहता है और अन्त में स्वयं भीड का अंग बन कर खो जाता है ।"[123]

123· आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ·कैलाश वाजपेयी

ज्ञानोदय, पृ·18, सितम्बर-जून 1963-64

विज्ञान की प्रगति से गाँव के स्वच्छन्द एवं निष्कलुष वातावरण पर शहरी सभ्यता बुरी तरह हावी हो गई। पेड-पौधों की हरियाली के स्थान पर "ईंट-पत्थर-सिमेन्ट-इस्पात" के जंगल की धूम चारों ओर फैल गयी है । आध्यात्मिक शून्यता के कारण रुग्ण मन और तन के मानवों की संख्या बढती जा रही है । इस प्रकार आधुनिक संस्कृति भोगवादी-शहरी संस्कृति बन जाती है जिस में नव-युवा और नव-धनाढ्य, अर्ध शिक्षित लोगों की अपक्व-संस्कृति की प्रधानता है । आध्यात्मिक शून्यता के कारण आयी विपत्तियों को दिखाता हुआ "देवेन्द्र इस्सर" ने यों प्रकाश डाला है "हिंसा, अपराध, यौन-विकार, कामोत्तेजना, परोत्पीडन, मदिरापान और नशाखोरी, नैतिक-मूल्यों से विमुखता, फिल्मी-स्कैंडल, सौंदर्य-प्रतियोगिताएँ, और परिश्रम के एकदम से धन कमाने की विधियाँ, स्वार्थ और अहंवाद के दृष्टिकोण को अनिवार्य समझा जा रहा है । अपरिपक्व लोग जीवन के सामान्य मूल्यों से विमुख होकर बाजारू-संस्कृति का पोषण करते हैं।[124] आज की हालत हमारे राष्ट्रनिर्माण और विशेषकर मानव-जाति की सभ्यता की रक्षा के सामने एक खतरा है । क्योंकि आधुनीकरण या वैज्ञानीकरण के नाम पर हम मनुष्य-पद से निम्न स्तर की ओर फिसल जा रहे हैं । "वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में मूल्यों का प्रश्न" में इस रहस्य का उद्घाटन किया गया है

"विज्ञान की प्रगति भी प्रकृति को उत्तरोत्तर रहस्यमुक्त करने की ओर है । यह प्रगति समस्त मूल्यों, मान्यताओं और अर्थों के पुरातन ढाँचे को खंण्डित करती चली जाती है । पुराने मूल्यों के तेज़ी से विघटन के फलस्वरूप व्यापक मूल्यहीनता, अर्थशून्यता और विश्वास हीनता एक गंभीर रूप धारण कर सामने आती है । "नेति नेति" के इस वातावरण में मनुष्य की निहित पाशविक प्रवृत्तियों और आवेगों पर मूल्यों का अंकुश समाप्त-सा हो जाता है । ऐसी स्थिति ही मनुष्यों को भी पाशविक

---

124. साहित्य और आधुनिक युग बोध - देवेन्द्र इस्सर, पृ.18

व्यवहार और आचार के निम्न स्तर पर ले आती है।[125] हमारे हर क्षेत्र में आधुनिकरण की प्रक्रिया दिखायी पड़ती है। कोट-पतलून पहनना मात्र हमारी आधुनिकता है। आधुनीकरण की आलोचना करते हुए "भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण में गतिरोध" में ऐसा प्रतिपादन मिलता है "आधुनिकता हमारे जीवन का मूल्य नहीं है, शक्ति नहीं है और आलोक नहीं है। यदि हम जीवन का वैज्ञानिक आधार ढूंढना और विकसित करना चाहते हैं तो वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रयोगशालाओं से बाहर निकाल कर जीवन-व्यवहार में लाना और लगाना होगा।[126]

विज्ञान की प्रगति के नाम पर पश्चिम के पीछे पड़ने की आदत आज भारत में हो गई है। इसके गुण-दोष-विवेचन तक हम भूल गए हैं। विदेश की चीज़ें, विदेशी-भाषा, विदेश से आनेवाले, विदेशी-सभ्यता आदि का अन्धानुकरण एक फैशन बन गया है। "सभ्यता का संकट" में इस का पर्दाफाश इस प्रकार हुआ है - "यूरोप भारत की ओर आँख उठाकर देखता था, भारत की उपज भी वहाँ सम्मान पा सकती थी। लेकिन डेढ-दो हज़ार साल से ऐसी स्थिति नहीं। अब हम उनका मुँह जोहते हैं। उनके जो रोग भी हैं, उन्हें भी हम अपने रोगों से अच्छा मानते हैं क्योंकि वे पश्चिम के रोग हैं, हमारे रोग घटिया रोग हैं, उनके रोग उन्नत रोग हैं।"[127]

विज्ञान के अभिशापों में से सब से बड़ा शाप युद्ध जन्य विभीषिकायें हैं। अनगिने युद्धों की गवाही बन चुकी हमारी पृथ्वी इस सत्य का निराकरण कभी नहीं कर सकती है कि युद्ध मानव समाज का सब से बड़ा अभिशाप है। अभी तक जितने भी युद्ध लडे गये हैं, उनके मूल में

---

125. वैज्ञानिक और औद्योगिक युग में मूल्यों का प्रश्न पूरनचन्द जोशी - "आलोचना", पृ.8, जनवरी-मार्च 1986

126. भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण में गतिरोध भंवरलाल सिंधी - "वात्सायन", पृ.62, फरवरी 1967

127. सभ्यता का संकट सच्चिदानन्द वात्स्यायन - नया प्रतीक, पृ.16

किसी व्यक्ति या गुट की स्वार्थभावना ही काम कर रही है । जिसके मस्तिष्क में युद्ध के बीज पनपते हैं वे कभी नहीं सोचते हैं कि युद्ध के दुष्परिणाम पीढीतर पीढी को भोगना पडता है । इन यंत्रणाओं में बुरी तरह आम जनता भी पिसी जाती है । इस प्रसंग पर "शुकदेव प्रसाद" का कथन सार्थक है "अपनी बुद्धि का प्रयोग कर मानव ने प्रकृति के रहस्यों को जानना चाहा और प्रकृति के साथ उसने ही पहले अमानवीय हरकत की । मानव ने अपनी हैवानियत के निशान हिरोशिमा और नागसाकी पर छोड रखे हैं । आज भी वहाँ की धरती की संतति जन्म से लूली-लंगडी, अंधी और बहरी पैदा होती है । इससे बढकर सभ्यता का अपमान और क्या हो सकता है ?"[128]

मूल्य विघटन विभिन्न क्षेत्रों में :-

राजनीतिक क्षेत्र में मूल्यच्युति

आज समूचे भारतीय राजनैतिक परिवेश में जो नैतिक गिरावट दीख पडती है, उस के कई कारण हैं । मूल्यों के प्रति समर्पण-भाव रखनेवाले नेताओं की कमी एक कारण है । पद ओहदे, सुख-सुविधा आदि त्याग कर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लिये नेतागण उन दिनों थे जिन में गान्धी, नेहरू, पटेल, तिलक, शास्त्री आदि विख्यात हैं । लेकिन आज देश-प्रेम, देश की एकता, राष्ट्र की उन्नति, पतितोद्धारण, निरक्षरता-निर्मूलन, गरीबी का उन्मूलन, समाज-कल्याण आदि को ध्यान में रखकर निस्वार्थ-सेवा करनेवाले नेताओं की कमी है । नेताओं में जिन नैतिक मूल्यों का अभाव है, आम जनता में भी उन मूल्यों का अभाव होना

128. विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ.27
नवम्बर 1982

स्वाभाविक है । आम व्यक्ति में आये परिवर्तनों के बारे में "डॉ॰ महावीर सिंह" का मत ऐसा है "व्यक्ति के जीवन में लाभ-लालच, उपभोग-प्रवृत्ति, सुख-सुविधा की उत्कंठा, लोक-प्रियता की चाह आदि आदिम प्रकृतियों का प्रभाव बहुत गहरा होता है जिसे नियन्त्रित करने केलिए समाज ने नीति, सदाचार, धर्म और व्यक्तिगत आचरण-संबंधी नियम बनाये हैं, जो समाज के स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली लगते हैं, लेकिन व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति इन नियमों का पालन करने की अपेक्षा इन से बचने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देता है । अत: चाह कर भी व्यक्ति श्रेष्ठ तथा चरित्रवान नहीं बन पाता । जिन नियमों तथा व्यवस्था को समाज मान्यता देता है उनके द्वारा सामान्यत: सभी व्यक्तियों का हित होना चाहिए, लेकिन व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा नहीं होता ।"[129] चरित्रहीन नेताओं के संपर्क में आने से आम जनता भी चरित्र-हीन, स्वार्थी एवं नियमोल्लंघक बनने की ताकत रखते हैं ।

राजनीति के क्षेत्र में मूल्य-पतन के कारणों में दूसरा स्थान आम जनता की निरक्षरता है । निरक्षरता का विकराल रूप प्रतिपादित करते हुए सच्चिदानन्द वात्स्यायन ने यों अपने विचार व्यक्त किया था "हमारे समाज का कम से कम दो-तिहाई निरक्षर हैं । कुछ प्रदेशों में दो-तिहाई या एक चौथाई ही साक्षर होंगे और कुछ प्रदेशों में उनसे भी कम ।"[130] आम जनता की निरक्षरता का लाभ उठाने में शिक्षित और अल्प शिक्षित दोनों प्रकार के नेतागण शामिल होते हैं । एक प्रकार की "मत्स्य संस्कृति" या "जानवर संस्कृति" इस प्रकार राजनीति में काम करती है । छोटी मछली को निगल कर मोटी बनती है दूसरी मछली । उसी प्रकार जंगल के छोटे छोटे जानवरों को बडे-जानवर खाकर और मोटे बनते हैं । इसी प्रकार अशिक्षितों के नेता के रूप में उन के बीच से

---

129. साहित्य में नैतिकता का प्रश्न डॉ॰ महावीरसिंह
आजकल, पृ॰28 मार्च 1989

130. सभ्यता का संकट सच्चिदानन्द वात्स्यायन, पृ॰13
नया प्रतीक, दिसंबर 1976

अल्प-शिक्षित-नेता उठते हैं । अनेकों अल्प शिक्षित नेताओं के ऊपर शिक्षित नेता आते हैं । निरक्षरों को जानवर-जैसे हाँकते हुए नेता केलिए जय बोलते घुमाना, झंडा दिखाना, सड़कों, बाज़ारों पर लूट चलाकर साधारण लोगों को तंग करना, उनमें आतंक और भय फैलाना, नेता के अनुकूल भाषणदेने की कला सिखाना ये सब कार्य इन निरक्षरों के द्वारा कराने में ही नेता की विजय छिपी रहती है । याने नेतागण अपनी अनैतिक-लक्ष्य-पूर्ति केलिए निरक्षर लोगों को उपकरण बनाते हैं ।

राजनीति के क्षेत्र से बुद्धिजीवियों का फिसल जाना भी मूल्य विघटन का एक और कारण है । इस की ओर संकेत करते हुए "बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति" में ऐसा बताया गया है - "बुद्धिजीवी और राजनीति के रिश्तों के बारे में आजादी के पहले और बाद का अन्तर कर लेना अच्छा है । आज़ादी की लडाई में बौद्धिक वर्ग के एक हिस्से ने राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान किया । लेकिन आज़ादी के बाद बुद्धिजीवी वर्ग धीरे धीरे राजनीति से अलग होता गया ।"[131] उसी प्रकार कलाकार एवं साहित्यकार भी राजनीति से ओझल हो गए हैं । स्वतंत्रता-संग्राम में गाँधीजी ने ऐसे सभी विभागों के लोगों का योगदान प्राप्त किया था । इस का परामर्श "पिछले ढाई दशक में बुद्धिजीवी कहाँ गए" में मिलता है "महात्मा गान्धी ने सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पुनर्जागरण की इस अग्नि से राजनीतिक चेतना की मशाल जलाने का काम लिया आज शायद ही कोई दल हो जो देश में परिवर्तन केलिए संगीतकारों, नर्तकों, साहित्यकारों, समाज-सुधारकों, शिक्षा-शास्त्रियों आदि सभी क्षेत्रों के प्रमुख व्यक्तियों का सहयोग लेता हो ।"[132]

---

131. बुद्धिजीवी और परिवर्तन की राजनीति कृष्णनाथ - नईधारा पृ.1, अगस्त 1968

132. पिछले ढाई दशक में बुद्धिजीवी कहाँ गए प्रदीप पन्त, नई धारा पृ.6, जून 1972

शैक्षणिक संस्थाओं में राजनीतिज्ञों की घुसपैठ भी मूल्य शोषण का एक कारण है । शिक्षा का क्षेत्र राजनीतिज्ञों का अड्डा बन चुका है । प्राइमरी क्लास से विश्वविद्यालय के छात्रों तक विविध दल देशीय, प्रान्तीय, जातीय - के छात्र नेता स्कूल-कालेजों में वर्तमान रहते हैं जिन का कार्य छात्रों की समस्याओं के समाधान के नाम पर स्कूल-कालेजों में शिक्षा-बन्द करना मात्र रह गया है जिससे पाठ्य-क्रम के अधिकांश-भाग पढाये-पढे बिना हर एक साल अल्प-शिक्षित युवकों को समाज में बेकारों की दुनियाँ केलिए छोड देना रह जाता है । इस प्रकार छात्र-जीवन के सारे दायित्वों को भूलकर विद्यार्थी राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं । छात्र-समूह की, आज की हालत का स्पष्टीकरण "फ्रान्क ठाकुरदास" ने इस प्रकार किया है "देश के विद्यार्थी वर्ग जो देश की कुल जनसंख्या के दस प्रतिशत आते हैं, जिन में से बहुत संख्यक शिक्षा कार्य से बढकर अन्य अनचाहे कार्यों केलिए अपनी ताकत का दुरुपयोग करते हैं वे शिक्षा की महत्ता का नाश करते हुए देश की शासन-व्यवस्था को भी बिगाडते हैं ।"[133] चुनाव के क्षेत्र में होनेवाला अन्याय भी मूल्य-पतन का एक और कारण है । इस समस्या पर "श्याम मोहन आस्थाना ने यों परामर्श दिया है - "मेरे विचार में भारत में लोकतंत्र अभी एक संभावना मात्र है, उसे एक उपलब्धि मान लेना ठीक नहीं है । चौथा चुनाव अपेक्षाकृत वास्तविक था, पर जाति, धर्म और धन ने जनमत को विकृत करने में कोई कोर-कसर नहीं छोडी । यहाँ सिर्फ लोकतंत्र के फार्म का सवाल नहीं है, असली प्रश्न लोक तंत्र के मिजाज का है । लेकिन भारतीय चुनावों में उम्मीदवारों के चयन, चुनाव-खर्च से

---

133. "The student community forms one-tenth of the total population of the country and what happened in the academic world was also happening in a more magnified form in the non-academic world whether the natural energies of the youth were channelised in one direction or the other, for one cause or the other, undermining the whole administrative system and ever ready to assume an anti-government stance." Indian political culture amid Transition :
- Frank Thakurdas, Society and Religion,p.27

लेकर जाली मतदान में राजनीतिक मूल्यों की इतनी उपेक्षा होती है कि लोक तंत्र की आत्मा बिलकुल खंडित हो जाती है ।[134]

पुरानी पीढी के नेताओं से नई पीढी के युवक छले जाते हैं और मोह भंग का अनुभव करते हैं जो मूल्य-शोषण का विकराल रूप धारण कर जाता है । नेताओं में बहुसंख्यक बूढे लोग होते हैं । ऊंचे ओहदे और सुख-सुविधाओं को भोग कर युवा वर्ग को मीठे वचन वे सुनाते हैं, जिस से बेकारी, निराशा, अर्थहीनता, भूख-प्यास आदि से ग्रसित वे मोहभंग में तडप रहे हैं । उनके सामने जीवन का चौराहा अवरुद्ध हो गया है । इस विषय की चर्चा करते हुए "रामवचन राय" लिखते थे "हिन्दुस्तान का युवा जन भी यह महसूस करता है कि अधिकारियों ने आदर्श के नाम पर सर्वत्र सुविधा भोगी व्यवस्था का जाल बिछा रखा है । अनुशासन और व्यवस्था का नाम जप कर वे हर जगह अपनी गोरी लाल करते हैं । दूसरी ओर ऊंची डिग्रियों के बावजूद युवजनों को बेरोजगारी और निठल्लापन का सामना करना पडता है । आधा पेट खाकर बुलबुलाये और न कह पाने की पीडा से उत्पन्न संकट के बीच सारा युवा-आक्रोश पिघलता रहा है ।[135] संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चरित्रहीन राजनीतिज्ञ, गान्धीवाद का हनन, नेताओं की स्वार्थता, आम जनता की अज्ञता, प्रजातंत्र का खोखलापन, निष्क्रिय शासक, साहित्यकारों की आँख मिचौनी खेल ये सब राजनैतिक क्षेत्र के मूल्य-संकट के विविध कारण है जिन का विशद प्रतिपादन आगामी अध्यायों में किया गया है ।

---

134. भारतीय लोकतंत्र पर घिरते बादल श्याम मोहन आस्थाना
नई धारा, पृ.6, अप्रैल 1968

135. नई पीढी का मूल्यबोध युवा लेखन के सन्दर्भ में रामवचनराय
नई धारा, पृ.69, दिसंबर-जनवरी 1972-73

आर्थिक क्षेत्र में मूल्यशोषण

किसी भी देश के आर्थिक पिछडेपन के कई कारण हो सकते हैं। यह तो सच है कि जनसंख्या-वृद्धि की ऊँचीदर इस का मुख्य कारण है। साथ ही नैतिक मूल्य-हीन राजनीतिज्ञ, व्यापारी वर्ग, सरकारी-कर्मचारी, भ्रष्ट नौकरशाही, ये सब देश के आर्थिक ढाँचे को बिगाड देने में अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्रता के 43 वर्ष के बाद भी बुनियादी ज़रूरतों - अन्न, वस्त्र, भवन, शिक्षा से वंचित आम-जनता देश की उजडी हुई आर्थिक हालत का जीवन्त प्रमाण है। भारतीय जनता की, विशेषकर आम जनता की, अतिनवीन हालत का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करते हुए एक अवलोकन "दि इलिस्ट्रेटड वीकिली" ने यों प्रकाशित किया है

"भारतीय जनता के पचास प्रतिशत के लोग दारिद्र्य रेखा के नीचे या उसके आसपास रहते हैं। करीब दो-तिहाई भारतीय निरक्षर हैं। आबादी के पच्चीस प्रतिशत भूमिहीन मज़ूदूर हैं। साठ प्रतिशत भारतीय अनसूचित जातियों, गोत्र वर्गों व पिछडी जातियों के हैं। ग्रामीण एवं शहरीय लोगों के जीवन-स्तर में जो अन्तर है वह विशाल होता जा रहा है। किसानों की आय में वृद्धि नहीं है। तीन करोड बीस लाख के युवक बेकार हैं जिन की समस्या से भारतीय समाज एवं राजनीति में भीषण हालत पैदा हुई है। इस के विपरीत आबादी के एक छोटे जन विभाग सुख-सुविधाओं की संपन्नता भोग रहे हैं।"[136]

---

136. Indian Society has unique features. It is a democracy with nearly half of the population living below or on the margin of what has come to be known as the 'poverty line'. Nearly [two] third of Indians are illiterate. More than a quarter of the Indian population comprises landless labour; 60 percent of Indians are included under scheduled, tribal andbackward clases. The gap between urban and rural living standards has been widening. The average per capita income of the agricultural sector has been witnessing a decline. The number of unemployed is estimated at 32 million and this stagnant pool of human resources is not only widening but is threatening to pose a challenge to the social and political integrity of the country. On the other side of this spectrum, a small percentage of the population has come to live a life of luxury which even the rich in the industrialised countries cannot afford. Elitist Economy, p.22,The Illustrated weekly of India.

आज़ादी की लडाई में भाग लिये युवकों ने सोचा कि आज़ादी के तुरन्त बाद ही उनकी दयनीय हालत में परिवर्तन आ जाएगा । लेकिन अर्थ नामक चीज़ की स्वतंत्रता अब तक नहीं हुई है । धनरूपी देवता का कटाक्ष पिछडे वर्ग तक नहीं आता । बीच में उसे कोई रोक रहा है । अस्वतंत्रता के दिनों में हमारी यह धारणा थी कि भारत की संपत्ति गोरों के देश में चली जाती थी । इसलिए विदेशियों को भगाने से भारत के गरीब लोगों के बीच में धन का वितरण होगा, हमारी मुसीबतें दूर होगी, इसी स्वप्न लोक से हम विचरण कर रहे थे । लेकिन गोरों के चले जाने के बाद भी धन-देवता कहीं उलझी हुई है । पिछले कई चुनावों में सत्ता में जो पार्टी नहीं आयी, उन्होंने कहा - शासक वर्ग के पाश में धनदेवता उलझी पडी, गरीबों की वेदना निवारण करने के उद्देश्य से वह कराह रही है । जनता-जनार्दन ने इस का अर्थ समझ लिया तो कुछ-एक बार विपक्षी दलों को, जिन्हों ने पीडित शोषित, मर्दित-अर्थहीन पिछडी जनता के वक्ता के रूप में अपने आप को घोषित किया, सिंहासन पर बिठाया । इस प्रकार शासक व विपक्षी दल के बार बार सिंहासन-ग्रहण करने पर भी गरीबों का और गरीब होना, अमीरों का और भी अमीर होना, देश के आर्थिक असन्तुलन का मूक है । याने गोरों के हाथ से शासन-डोर "काले गोरों" के सभी दलों के हाथ में आने पर भी काफी-आर्थिक परिवर्तन समाज में नहीं हुआ है ।

आबादी की वृद्धि भारत की अर्थव्यवस्था के पिछडेपन के कारणों में एक है । डॉ॰ एस॰ चन्द्रशेखर ने इस विषय पर अपने विचार यों व्यक्त किया था - "जन संख्या-वृद्धि की उँची दर ही देश की

अर्थव्यवस्था के पिछडेपन का मुख्य कारण है । 1968 तक भारत की जनसंख्या में 18 करोड 27 लाख की वृद्धि हो चुकी है । पंचवर्षीय योजनाओं से जो कुछ लाभ हुआ, वह जनसंख्या वृद्धि के कारण व्यर्थ हो गया है । इसलिए विकास-सम्बन्धी गतिविधियों को उद्देश्यपूर्ण बनाने केलिए जनसंख्या की वृद्धि की रोकथाम परमावश्यक है ।[137]

पंच वर्षीय योजनाओं के संचालक अफसरों का, ठेकेदारों से दोस्ती जोडकर काला-धन प्राप्त करना, व्यापारियों के द्वारा मालों की जमाखोरी करना, सरकारी अफसरों का घुसचोरी व अन्याय के मार्ग से धन कमाना, ये सब आर्थिक विघटन के कारण है । भारतीय अर्थ-व्यवस्था में आये मूल्य विघटन का विशद प्रतिपादन कई नाटकों में आया है जिस का अध्ययन अलग अध्याय में किया गया है ।

धार्मिक क्षेत्र में मूल्य स्खलन

धर्म - Religion — ईश्वरीय विषय का प्रतिपादन करता है । मानव-संस्कार का उदय धर्म से हुआ है । धर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए क्रांतदर्शी तत्वज्ञ, विचारक, एवं दार्शनिक डॉ॰ राधाकृष्णन ने इस प्रकार लिखा था "धर्म का निवास मनुष्य के मन में है, यह स्वयं मनुष्य के स्वभाव का एक अंग है । बाकी प्रत्येक वस्तु विलीन हो जा सकती है, परन्तु ईश्वर में विश्वास जो संसार के सब धर्मों की चरम स्वीकृति है, शेष रह जाता है ।"[138] मनुष्य का सम्बन्ध अन्य मनुष्यों से कैसे रहना चाहिए, ईश्वर का स्थान सृष्टि में क्या है, इस जगत् का संचालन कैसे होता है, भविष्य में जगत् और मनुष्य की

---

137. भारत केलिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण आवश्यक है
- डॉ॰ एस॰चन्द्रशेखर - नई धारा, पृ॰117, मार्च 1969

138. धर्म, तुलनात्मक दृष्टि में डॉ॰राधाकृष्णन, पृ॰14
चौथा सं॰1969

क्या हालत होगी ? ऐसी अनेक बातों पर सदियों से मनुष्य चिन्तित थे । ऊपर के सभी प्रश्नों के उत्तर "धर्म" में मनुष्य ने पाये । धर्म-संबंधी चर्चा करते हुए "विज्ञान और मानव-मूल्य" में ऐसा परामर्श मिलता है "प्राचीन काल की सभी सभ्यताएँ धर्म में विश्वास रखती थीं । हिन्दु, इस्लाम, यहुदी, ईसाई सभी धर्मों में ईश्वर की कल्पना की गई है । कमोवेश सभी धर्मों में ईश्वर को विश्व का निर्माता माना गया । काल-प्रवाह के साथ धर्म हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनने लगे और धार्मिक ग्रन्थ आस्थाओं के आधार । यहाँ तक कि सामाजिक रीतियाँ और नैतिक नियम तक धर्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित होने लगे । धर्म के मूल सिद्धान्त ही स्मृति के आधार बने । परन्तु कालान्तर में ये धर्म रूढियाँ बन गए । एक समय ऐसा भी था जब धर्म ग्रन्थों के खिलाफ कोई बात नहीं सुनी जा सकती थी ..... ।"[139]

धर्म जब तक मानव के मानस में सुख, शांति, तन्दुरुस्ती आदि प्रदान करते रहे तब तक मनुष्य ने उस की शरण ली । उसकी दुर्बलताओं में उसे मज़बूत करते रहे धर्म की आड में रहना मनुष्य ने परम भाग्य मान लिया । लेकिन विज्ञान की प्रगति ने धर्म को चुनौती दी । "आज के आदमी की नियति और आस्था की बिन्दु" नामक निबन्ध में वर्तमान समाज में आये इस प्रकार के परिवर्तनों का स्पष्टीकरण किया गया है। "आदमी का सब से सबल आधार सदियों तक धर्म रहा । व्यक्ति का ही नहीं, सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था का भी । पर बीसवीं सदी तक आकर यह आधार लगभग डगमगाने लगा था । विज्ञान की चुनौतियों ने धर्म पर से व्यक्ति का मूल विश्वास उठाना शुरू कर दिया था । धर्म के प्रति पूर्णत: आस्थाहीन तो वह व्यक्ति का नहीं बना पाया है, पर धर्म को एक नितान्त व्यक्तिगत रूप उसने ज़रूर प्रदान कर दिया है ।"[140]

139· विज्ञान और मानव मूल्य शुकदेव प्रसाद, आजकल, पृ·28
नवम्बर 1982

140· आज के आदमी की नियति और आस्था की बिन्दु रघुवीर सिन्हा
नई धारा, पृ·3, सितम्बर-अक्टूबर 1975

विज्ञान की प्रगति ने धर्म को निरर्थक घोषित किया । धर्म के स्थान पर विज्ञान आसीन हुआ । लेकिन विज्ञान ने मानव को हृदयहीन कर दिया । अपने को आधुनिक और वैज्ञानिक घोषित करते हुए कई विचारकों ने धर्म के विरुद्ध प्रचार शुरू किया । भौतिकवादी, मार्क्सवादी आदि भी उन के साथ मिले । इस प्रकार धर्म अकेला पड गया । बाकी सभी विचारकों के पंजे में जकड कर दम घुटता रहा । बीसवीं सदी के अन्त तक पहुंचे, धर्मरहित नई पीढी के सामने अवतरित विज्ञान की आलोचना करते हुए शुकदेव प्रसाद ने ऐसा आरोप लगाया है

"विज्ञान ने हमें ऐटमी ताकत दी, पर साथ ही हमारे विवेक का भी नाश किया और हम अपना धर्म (मानव धर्म) भी भूल गये । मानवता छोडकर दानवता पर उतर आये और हैवानियत की आग में मानवता को जलाकर राख कर दिया । महाविज्ञानी - आईंस्टाइन जापान के बम्काँड पर रो उठे थे और उन्होंने स्पष्ट कहा था - "मानव परमाणु शक्ति के योग्य नहीं हैं ।" वस्तुत: ये हरकतें अमानवीय हैं, सभ्यता के नाम पर कलंक है, विज्ञान के अभिशाप है ।"[41]

मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू पर धर्म का प्रभाव था । धर्म के नाम पर पुरोहित गण आम जनता का शोषण कर रहे थे । पाप-पुण्य के नाम पर जन्म से लेकर मृत्यु तक के प्रत्येक कार्य केलिए लोगों से दान के रूप में, फीस के रूप में गहने, गाय, रुपए, अन्न-वस्त्र आदि वसूल करते थे । सभी धर्म के प्रवर्तक इस केलिए आदी थे । ईसाई-धर्म के ऐसे ढोंग भक्ति करनेवाले पुरोहितों की हँसी उडाते हुए प्रभु यीशु ने यों कहा - "हे कपटी शास्त्रियों, और फरीसियो, तुम पर हाय, तुम चूना फिरी हुई कब्रों के समान हो जो ऊपर से तो सुन्दर दिखाई देती हैं, परन्तु भीतर मुर्दों की हड्डियों और सब प्रकार की मलिनता से भरी हैं । इसी रीति से तुम भी

---

41. विज्ञान और मानव-मूल्य शुकदेव प्रसाद - आजकल, पृ.27-28 नवम्बर 1982

ऊपर से मनुष्यों को धर्मी दिखाई देते हो, परन्तु भीतर कपट और अधर्म से भरे हुए हो।"[142] धर्म-प्रचार के नाम पर अधार्मिक राह चलनेवाले पण्डित और पुजारी भी हैं। धर्म के नाम पर बेचारी युवतियों के साथ अन्याय करनेवाले पुरोहित गण भी हैं। इन की यंत्रणाओं के शिकार बनते भक्त धर्म से सदा केलिए मुख मोडने को बाध्य हो जाते हैं। इस प्रकार भक्ति का अपमान होता है। एक ओर धर्म के नाम पर रुपया कमाना शुरू हुआ, दूसरी ओर व्यभिचार बढा तो धर्म जनता के विरोध का विषय बन गया। इसी के साथ एक नौकरी स्वीकार करने के शीघ्रमार्ग के रूप में अभक्त लोग पुरोहित श्रेणी में आये। ऐसे वेतन-चाहे भक्त-वेषी अशुद्ध और अमान्य व्यवहारवाले कामवासना से पूर्ण लोगों को उपदेश देते हुए असली-भक्ति की परिभाषा करने का प्रयास बैबिल में इस प्रकार हुआ है "शुद्ध और निर्मल भक्ति यह है कि अनाथों और विधवाओं के क्लेश में उनकी सुधि ले और अपने आप को संसार से निष्कलंक रखें।"[143]

पारिवारिक क्षेत्र में मूल्य विघटन

पिछले चार दशकों से नैतिक-मूल्य-विघटन के कारण समाज की हर संस्था एक मूल्यहीन जिन्दगी ढो रही है, पारिवारिक क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। एक परिवार के सदस्यों को - याने माँ-बाप व उनकी सन्तान को, भाई और बहन को, पति और पत्नी को -

142. धर्मशास्त्र, मत्ती 23 27-28, पृ.35

143. "Religion that is pure and undefiled before God and the Father is this : to visit orphans and widows in their affliction, and to keep oneself unstained from the world."
James 1:27, p.1134, The Holy Bible Revised Standard Edition - A.J. Holman Company, Philadelphia, 1962

प्यार व ममता रूपी रस्सी ही आपस में बाँधी हैं । इस प्यार और ममता के अभाव में, पारिवारिक रिश्तों में, ठण्डेपन, निर्जीवता, ऊसरता आदि दीख पडते हैं । आत्मीयता आज अलगाव में बदलती जा रही है । अतिसंपन्नता के आवरण में ढके हुए पारिवारिक जीवन में, रिश्ते मात्र औपचारिक बनते जा रहे हैं । सारी सुख-सुविधाओं से घिरे रहते हुए भी, अपने पारिवारिक जीवन से वे तृष्ट नहीं हैं । एक ही छत के नीचे सोने पर भी एक दूसरे से अजनबीपन का अनुभव कर रहे हैं । एक ही माँ-बाप के सन्तान होते हुए भी दुश्मनी की निगाह से आपस में देख रहे हैं । आत्म-सुख की अंधी दौड में बिस्तर बदलने में ही जिन्दगी की धन्यता को समझनेवाले पति-पत्नी अपने पारिवारिक जीवन तबाह कर रहे हैं । वासना-चक्र में पिसे हुए शादी शुदा मर्द और औरत अपने बच्चों का भविष्य भी बर्बाद कर रहे हैं क्यों कि असन्तुष्ट, बेचैन, दमघुटनेवाले परिवार में पलनेवाले बच्चे अपने माँ-बाप की नकली-प्रतिलिपियाँ होते हैं ।

समाज की लघु इकाई परिवार के सदस्यों में, वर्तमान-समाज में घटित होते सभी परिवर्तनों का प्रभाव पडना स्वाभाविक है । "परिवार" शब्द की कल्पना "लघु परिवार" से है जहाँ माँ-बाप, एवं उनकी दो या तीन सन्तान होंगे । याने माता-पिता, भाई-बहन, पिता-पुत्र या पुत्री, माता-पुत्र या पुत्री इन लोगों के आपसी सम्बन्ध में आये नाते का परिवर्तित रूप हमारी चर्चा का विषय है । अस्वतंत्र-भारत एवं स्वतंत्र-भारत दोनों जमाने के आपसी-सम्बन्धों में आकाश-पाताल का अन्तर है । माँ-बाप एवं गुरुजनों के प्रति जो पुरानी आदर-भावना कायम थी वह जड से उखाडी गई है । "पूज्य पिताजी" का स्थान एक निर्माण यन्त्र के रूप में हुआ है तो आदरणीय माता का स्थान, अनाज, गेहूँ आदि सुरक्षित रखने "बोरा" के रूप में । यन्त्र से उत्पादित चीज़ में यन्त्र की

छाप तो है अवश्य, लेकिन उस माल की विक्रय-यात्रा में आनेवाले नष्ट की जिम्मेदारी यन्त्र को नहीं है । उसी प्रकार अपने बेटे-बेटियों के अभिभावक होने के साथ साथ उनके पलने-बढने के मार्ग में मार्गदर्शक या संरक्षक रहने की जिम्मेदारी से कई मॉ-बाप हाथ धोते हैं । यहीं से पारिवारिक धरातल पर मूल्य विघटन शुरू होता है । सन्तानों के प्रति ममता, प्रेम, एवं वात्सल्य एक ओर पारिवारिक जीवन से नष्ट हुए हैं तो दूसरी ओर पुत्र-पुत्रियों को भी मॉ-बाप के प्रति आदर, श्रद्धा, प्रेम, आदि गुण प्रकट करना मालूम नहीं है ।

इस परिवर्तित मन:स्थिति का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्र-भारत के शिक्षा-पाठ्यक्रमों में पारिवारिक पवित्रता की महानता की प्रशंसा कदापि नहीं हुई है । मातृभूमि, मातृभाषा, देश-प्रेम, राष्ट्रभाषा, भाई-चारा, गुरुजन, माता,पिता, ईश्वर-भक्ति आदि विषयों को सिखाने के स्थान पर बच्चों के नन्हे हृदय पर विदेशी-भाषा, विदेशी-सभ्यता आदियों की महत्ता अंकित करने की जल्दबाजी, दर्शनीय है । बच्चे को अपनी माताजी का स्तन्यपान कराने के स्थान पर विदेशी कम्पनियों में बनाये जानवरों का सूखा दूध गरम पानी में मिलाकर बोतलों में भरकर पिलाने की प्रथा आ गई है जिस से माता के दूध से वंचित बच्चे में माता के प्रति विरोध बढने में क्या दोष है ? इसके साथ ही साथ अंग्रेज़ी भाषा-शिक्षण भी तीसरे साल से शुरू होता है । विदेशी-सभ्यता में रंगी गई किताबें, विदेशी बालकों का चरित्र, विदेशी वस्तुओं का भ्रम ये सब नवजात शिशु में जडें पकडती हैं । विदेशी साहित्य से परिचय प्राप्त करते, वहॉ की सडी विकृतियॉ सीखते उन बालकों में मातृभाषा, देश-भक्ति आदि का होना कहॉ तक समीचीन है ? विदेशी सभ्यता की सनक लगी हुई युवा पीढी को अपना पारिवारिक परिवेश यहॉ तक कि, अपने मॉ-बाप भी बेज़ान लगते हैं । परिणामत: परिवार में नई समस्याएँ उठ खडी होती है ।

परिवारों की अर्थ-पराधीनता या अर्थाभाव एक बडी समस्या है । महंगाई से बचने केलिए आधुनिक स्त्री नौकरी करने अपने घर से बाहर निकलती है । बच्चों का पालन पोषण, पति की सेवा आदि बातों में समय न मिलती युवति दफ्तरों की दुनिया में पहुंचते ही, वहाँ भी समस्याएँ उठती है । इसी प्रकार पुरुष भी नौकरी केलिए जाते हैं । इस प्रकार एक यांत्रिक जीवन बितानेवाला प्राणी बनकर मनुष्य जीवन जडमय बनता है । इस विषय पर विचार करते हुए "आज का मनुष्य और यान्त्रिक सभ्यता" में ऐसा बताया गया है "आज के मनुष्य का जीवन, विशेष रूप से बडे नगरों में रहनेवाले व्यक्ति का जीवन मात्र जड दिनचर्या है । वह हर प्रात: उठ कर आफिस केलिए भागता है । एक बजे भीड भरी कैण्टीन में अपना "लंच" लेता है । शाम को फिर एक ही बस या लोकल से घर लौट आता है । लाखों की संख्या में बने एक ही ढंग के मकानों में से किसी एक में अपने छोटे से परिवार के साथ रहता है । त्योहार आने पर थोडा अधिक साफ धुले अच्छे वस्त्र पहनता है । अपने परिवार को लेकर सस्ता-महंगा मनोरंजन करने निकलता है जिस में उसे आनन्द कम ऊकताहट अधिक भोगनी पडती है ।"[144] इस प्रकार एक अतृप्त वातावरण में आज का परिवार जीवन व्यतीत होता है ।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आज परिवर्तन आ गया है । शिक्षा प्राप्त युवक और युवतियाँ बेकारी के इस युग में दाल-रोटी की समस्या का निवारण न कर पाने के कारण अविवाहित रहने को विवश हो जाते हैं । ऐसे कुछ एक युवक-युवतियाँ विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्ध केलिए विवश हो जाते हैं जो समाज के सामने घृणित कार्य माने जाते हैं । इस हालत के बारे में डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने भविष्य में आनेवाली विपत्तियों पर प्रकाश डालते हुए यों लिखा है - "विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष सम्बन्धों का एक मात्र कारण आनन्द प्राप्ति है । भारतीय समाज में विवाह पूर्व चोरी छिपे इन सम्बन्धों को मान्यता प्राप्त नहीं है ।

---

144. आज का मनुष्य और यांत्रिक सभ्यता डॉ॰केलाश वाजपेयी, ज्ञानोदय, पृ॰18, सितम्बर-जून 1963-64

जो स्त्री-पुरुष विवाह-पूर्व चोरी-छिपे इन सम्बन्धों में उलझ जाते हैं, उनमें पुरुष भले ही बेदाग निकल जाय, स्त्री के जीवन पर ग्रहण लग जाता है।"[145] विवाह-पूर्व स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को हम व्यभिचार संज्ञा से पुकारते हैं, उस मूल्य विघटन की एक समस्या है दहेज प्रथा । युवतियाँ अक्सर इस का दोष भोगती हैं । शादी करने केलिए पुरुष को दहेज के रूप में आजकल लाखों की संख्या में रुपए और सोने के आभूषण देने पड़ते हैं । लेकिन यह एक नग्न सत्य है कि व्यभिचार में स्त्री को पुरुष रुपए देते हैं पुरस्कार या शुल्क के रूप में । इस प्रकार नौकरी के अभाव में या रुपए के अभाव में विवाह-पूर्व यौन-सम्पर्क अक्सर चलता है । अपने से कम शिक्षित और अनचाहे असुन्दर युवक या बूढे के साथ, दहेज के अभाव में बेचारी युवति की शादी हो जाने पर, अतृप्त जीवन बिताती युवति अपने पति से रूठ कर या छिपती छिपती और पति किसी कारण वश पत्नी से बिगड कर या गुप्त में, अन्य पुरुषों के या परस्त्रियों के साथ अवैध संबंध रखते देखते आये हैं । एक ही दफ्तर में काम करनेवाले पुरुष-स्त्रियों का अतिरिक्त संबंध इस का उदाहरण है । अलावा इसके पति या पत्नी शादी के बाद विदेश जाने पर, पडोसी के साथ, घर में रहे व्यक्ति का अनैतिक सम्बन्ध और विदेश गये उस का सम्बन्ध विदेश की स्त्री या पुरुष के साथ भी होता है । इस प्रकार स्वतंत्र-भारत में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में अवश्य परिवर्तन आ गया है । शादी-पूर्व-यौन-सम्बन्ध, शादी-शेष-पर-पुरुष-सम्बन्ध, अफसर, नेता, अमीर आदि को शरीर-समर्पण कर कार्यलाभ की चाह, एवं स्व-पुरुष या स्त्री से अतृप्त होकर पर-स्त्री-पुरुष सम्बन्ध इन सब ने हमारी पारिवारिक पवित्रता में कलंक लगा दिया है ।

---

145. साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में स्त्री-पुरुष सम्बन्ध
डॉ. नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, पृ. 48, प्र.सं. 1985

विज्ञान की प्रगति ने भौतिक-सामग्रियों से हमारे ग्रामीण वातावरण को शहरीला कर दिया है । मादक-द्रव्यों के सेवन से एक विभाग के लोग बेसुध हो गए हैं । शराब, ताडी, गंजा, भांग, ब्रौन-शुगर न जाने क्या-क्या नाम हैं इनके जो परिवार की पवित्रता में अशांति के बीज बोते आ रहे हैं । इनके उपयोग में स्त्री-पुरुष भेद मिट गये हैं । स्कूल-कालेज के छात्र-छात्रायें इसके शिकार हैं । इनके सिवा गर्भ-निरोधक कई सामग्रियों का प्रचार भी विद्यार्थियों के मन में अनुचित व्यवहार केलिए प्रोत्साहित करते हैं । बच्चों के बीच के यौन-सम्बन्ध का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने यह व्यक्त किया है "पति-पत्नी और बच्चे एक ही कमरे में जीवन-यापन करते हैं । फलस्वरूप पति-पत्नी के यौन-सम्बन्धों का कुप्रभाव बच्चों पर पडता है । ये बच्चे बडे होकर विवाह-पूर्व उन यौन-क्रियाओं को क्रियान्वित करते हैं जो उनके मस्तिष्क में पहले ही घर कर चुकी हैं ।[146]"

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के अनैतिक विकृत जानवर सदृश्य सभ्यता को प्रगति मानने वाले एक न्यून विभाग भी हैं जिन में जानेमाने साहित्यकार, ऊँचे ओहदों पर विराजनेवाले आदि आते हैं जिन के "अमृत वचन" में युवा पीढी को गुमराह करने की ताकत छिपी रहती है । उनके विचार में व्यभिचार सम्मानित है तथा व्यभिचार की सुविधा प्रदान करने की पुकार वे करते हैं भी । "नैतिकता के प्रयोग" में हम यह पढ सकते हैं जो इस प्रकार है - "मैं अपने अनुभवों से कहना चाहता हूँ, जिस शहर में वेश्याएँ नहीं होतीं या जहाँ खुली वेश्यावृत्ति की छूट नहीं होती, उस शहर में यौन-सम्बन्धों की नैतिकता हमेशा सन्देहास्पद रहती है । अपने लगातार अकेलेपन और मुक्त जीवन की स्वच्छन्दता ने मेरे विचारों के सारे द्वार खोल रखे हैं ।[147]"

146· साठोत्तर हिन्दी नाटक में स्त्री-पुरुष संबंध डॉ॰ नरेन्द्रनाथ त्रिपाठी, पृ॰50, प्र॰सं॰ 1985

147· नैतिकता के प्रयोग रमेश बक्षी, नई धारा, पृ॰61, जनवरी-फरवरी 1969

ऐसी विचार-धाराओं की सर्व-सम्मति नहीं है । मनुष्य और जानवर में अन्तर अवश्य है । जानवरों में यौन-सम्बन्ध-सम्बन्धी कोई न्याय नहीं है । लेकिन मनुष्य में यह नियम है कि उसका सम्बन्ध कहाँ, किस के साथ, किस परिस्थिति में, कैसे किया जाना चाहिए । मनुष्य जीवन की महानता को स्पष्ट करते हुए "डॉ॰ रिचार्ड वन क्राफ्ट एबिन्ग" ने ऐसा लिखा "मनुष्य केवल कामेच्छा को तृप्त करने केलिए परिश्रम करता है तो वह स्वयं अपने को जानवर के समान बनाता है । लेकिन नैतिक-विचार, महत्वाकांक्षा, सुन्दरता आदि को स्थान में रखकर अपने यौन-विकार को लगाम लगाने पर एक उन्नत स्थान तक पहुँच सकता है ।[148]

पारिवारिक मूल्य-विघटन का दोष बहुत बडा है । परिवार से निकलते विघटित व्यक्ति समाज के विभिन्न क्षेत्रों - स्कूल, कालेज, दफ्तर, मन्दिर, राजनीति आदि में दोष अवश्य फैलायेंगे। व्यक्ति-व्यक्ति के रिश्तों में आये विघटन से समाज भी विघटित होगा। इस प्रसंग में देवेन्द्र इस्सर की राय बिल्कुल समीचीन लगती है "वैयक्तिक रिश्तों, और संयुक्त जीवन के विघटन के कारण मनुष्य एक ऐसी स्थिति से गुज़र रहा है, जिसे कई नाम दिए गए हैं - एकाकीपन, अजनबीपन, वैयक्तिक अलगाव, और एलियनेशन । और कई समस्याएँ पैदा हो गई हैं, जिन में नशापान, ड्रग्स का प्रयोग, मानसिक उलझनें और रोग, सामाजिक असमता और संघर्ष, कामोत्तेजना और हिंसा, अपराध और बाल-अपराधवृत्ति, आवारगी और सस्ता मनोरंजन अधिक महत्वपूर्ण है ।[149]

148· Psychopathia Sexualis Dr.Richard Von Krafftebing, p.29, U.S.A.,1965

149· साहित्य और आधुनिक युगबोध देवेन्द्र इस्सर, पृ·3, प्र·सं·1973

पारिवारिक नातों में आये मूल्य-शोषण का - स्त्री-पुरुष सम्बन्ध में आये परिवर्तित रूप का - विशद अध्ययन अलग अध्याय में किया गया है ।

नैतिक मूल्यों के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की पहचान और परख करने के बाद निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि किसी भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों का महत्त्व अक्षुण्ण है । यह तो सही है कि मूल्यों में काल व देश के अनुरूप परिवर्तन अपेक्षित है । व्यक्ति और समाज केलिए मूल्यों की भूमिका इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि इन से ये दोनों अस्तित्ववान रहते हैं, उनकी सुरक्षा, प्रगति और विकास के मुख्य उपादान भी हैं ये मूल्य । नैतिकता मानवीय जीवन का स्पृहणीय पहलू है, श्रेष्ठ एवं उदात्त मूल्य ही मनुष्य को नैतिक बल प्रदान करते हैं । मूल्यों की मौजूदगी के साथ साथ मूल्यों का विघटन भी हर युग में हुआ है । पुरानी परिकल्पनाओं, मान्यताओं और धारणाओं के विरोध में नवीन परिकल्पनाओं, मान्यताओं और धारणाओं का जन्म लेना सहज-प्रक्रिया है । हमारा वर्तमान जीवन परंपरित समाज-व्यवस्था से विलग होता हुआ एक नूतन सभ्यता में प्रवेश कर चुका है लेकिन खेद की बात यह है कि वर्तमान सभ्यता संकट में है । भौतिक उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ आज का व्यक्ति मूल्यबोध की दृष्टि से बिलकुल धराशायी हो गया है । अपने मूल्यबोध और इन्सानियत को दफ़ाने के बाद आदमी जो कुछ उपलब्धियाँ हासिल करते हैं वे सब के सब नाचीज़ और बेमूल्य हैं ।

विशिष्ट मूल्य बोध युक्त रचनायें कालजयी हुई है । समाज के प्रति जिम्मेदारी रखनेवाले सजग साहित्यकार कभी भी मूल्यों का हनन सह नहीं सकता । स्वातंत्र्योत्तर नाटककारों ने अपनी रचनाओं को सामाजिक मूल्याभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना दिया है । आगामी अध्यायों में समाज के विविध क्षेत्रों में पाये जानेवाले मूल्य विघटन की विशद चर्चा की गई है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀